हिन्दी-गौरव-ग्रंथमाला—३०वां ग्रंथ

काशीके गोस्वामी दीनदयालुगिरिकी रचा

अन्योक्ति कल्पद्रुम

कविकी जीवनी, कवितापर आलोचना,

और आवश्यक टीका टिप्पणियोंसे

अलंकृत

सम्पादक

रामदास गौड़

प्रकाशक

साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।

तीय संस्करण १००० | संवत् १९८८ | मूल्य १)

वर्णक्रम सूची

ति

गोस्वामी दीनदयालुगिरि

सुखद देहली पै जहाँ बसत विनायक देव,
पश्चिम द्वार उदार है काशीको सुरसेव।

—अनुरागबाग

... गायघाटपर पाठकोंका एक पुराना घराना रहता था। ... भी कभी अच्छे दिन थे। परन्तु कालचक्रके फेरसे जब ... १८५९ में शुक्रवार बसन्त पञ्चमीको बालक दीनदयालुका ..., केवल इनके माता-पिता बच गये थे। उस समय पाठकजी ... थे। इनका गुरु घराना देहली विनायकके मठमें था। कुशागिरि इनके गुरु थे। कुशागिरिजी बड़े विद्वान कृष्ण-भक्त थे ... गद्दीके महन्त थे। देहली विनायकके आसपास इनकी भारी ... थी। मटौली ग्राममें एक मठ था। काशीमें गायघाटपर भी ...न था। बरनाके किनारेका रामेश्वर मन्दिर भी इन्हींके ... था। पाठकजी गुरुके बड़े भक्त थे। बालक दीनदयालु चार बरसकी अवस्थासे गुरुवरके चरणोंमें अधिकांश रहा करता था। छः बरसका हुआ तभी माताकी गोदीका सुख छिन गया। बाद ही बापको पक्षाघात रोग हुआ। गुरुवरके चरणोंमें अपने पुत्रको सौंप पाठकजी बैकुण्ठ सिधारे।

दीनदयालु इतनी छोटी अवस्थामें अनाथ हो गया, तो भी ...के कष्ट नहीं हुए। शिष्यवत्सल गोस्वामी कुशागिरिजी माता ... अधिक प्यारसे इसका पालन पोषण करने लगे। स्वयं लिखाया। गुरुजी बड़े सदाचारी, ब्रह्मचर्य्यपरायण भगवद्भक्त

थे। उनके जीवित आदर्शका बालक दीनदयालु पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पड़ा। संस्कृत और हिन्दी साहित्यका बहुत अच्छा अनुशीलन किया। छोटी ही अवस्थामें काव्यरचनाकी ओर बालक दीनदयालुकी रुचि दिखाई पड़ी। बुद्धि प्रखर थी। बच्चा होनहार था। शिक्षा अच्छी हुई। साहित्यका अच्छा मर्म्मज्ञ हो गया। मठका जीवन था। साधु संन्यासियोंकी सङ्गत थी। भक्ति और वैराग्यकी ओर मन खिंचता गया। पूर्व संस्कार भी सहायक हुआ होगा। दृष्टान्तवाली स्फुट कविताएं ग्यारह बरसकी ही अवस्थासे लिखने लगा। सत्रह बरसकी अवस्थामें पुस्तक प्रणयन आरम्भ किया। पहला ग्रंथ था दृष्टान्त तरंगिणी। इसे कविने बीस बरसकी अवस्थामें अर्थात् सम्वत् १८७९ में समाप्त किया। यों तो यह बाल ब्रह्मचारी थे, जन्मके ही वैरागी थे किन्तु इनकी दृढ़ सद्प्रवृत्ति देख-कर गोस्वामी कुशागिरिजी चौथे आश्रममें प्रवेश करनेपर सहर्ष सहमत हुए। इन्होंने बीस वर्षकी अवस्थामें गुरुसे संन्यास ले लिया। गोस्वामी दीनदयालुगिरि हो गये। इनका जन्मका नाम गुरुका ही रखा हुआ था। संन्यासाश्रम ग्रहण करनेपर नाम बदलनेकी आवश्यकता न हुई। केवल गुरुकुलकी "गिरि" उपाधि ग्रहण करनी थी।

इस नये संन्यासीमें विलक्षण प्रतिभा थी। दृष्टान्त तरंगिणीको पढ़कर सहसा यह विश्वास नहीं होता कि बीस बरसके नवयुवककी लिखी कविता है। परन्तु वास्तविक बात यह है कि जिसे बालकविता कहते हैं दीनदयालुगिरिने कभी लिखी ही नहीं।

कुशागिरिके दो और संन्यासी चेले श्री दीनदयालुजीके बाद हुए। एक तो श्री शिवअमरगिरि, जो काने थे, और दूसरे श्री रामदयालुगिरि। यह दोनों बड़े झगड़ालू थे। जब सम्वत् १८९० के लगभग गोस्वामी कुशागिरिजीका वैकुण्ठवास हुआ, तब अपने अपने भागके लिये दोनों लड़ने झगड़ने लगे।

स्वामी कुशागिरिजी इतना ऋण छोड़कर मरे थे कि देहली विनायकके आसपासकी सारी जमीदारी नीलाम हो गयी। (सभाके संस्करणके अनुसार) यह जमीन अब काशी-निवासी गोकुलदास विट्ठलदास गुजरातीके घरानेमें है। जो कुछ मिल्कियत बची थी उसके लिए आसपासके लोभी जमीदारोंके उसकानेसे दोनों चेले लड़ते रहे। जब गोस्वामी दीनदयालुगिरिके समझाने बुझाने का कुछ फल न हुआ तो खिन्न होकर कविजी तीर्थयात्राको रामेश्वर की ओर चले गये। वहांसे छः महीने पीछे आये तो मटौलीके मठमें रहने लगे। काशीमें जब आते थे तब गायघाटपर ठहरते थे। वैराग्य वृत्ति थी। मठकी थोड़ी सी जमीन थी। अत्यन्त कम आमदनी थी। उसीपर गुजर करते थे। कभी किसीसे कुछ मांगा नहीं। कई राजों महाराजोंकी और विशेषकर अमेठीवालोंकी इच्छा थी कि उनके यहाँ जाकर कविजी रहें, परन्तु दीनदयालुजी और कवि तो न थे। यह तो थे संन्यासी मुमुक्षु, यह बन्धन कैसे पसन्द करते! ऐसे ही किसी अवसरपर कहते हैं कि उन्होंने यह दोहा कहा था—

> पराधीनता दुख महा सुख तहँ जहँ स्वाधीन,
> सुखी रमत सुक बन बिषें कनक पींजरे दीन।

उन्हें काशी अत्यन्त प्यारी थी। वह काशीविश्वनाथका साथ छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहते थे। गुरुजीका एक घोड़ा था। मटौली ग्रामसे गेरुआ कुरता, गेरुए रंगकी कलनीदार पगड़ी पहने उसी घोड़ेपर सवार यह काशी आया करते थे। गायघाटमें-ठहरते थे। यहांसे काशीके मित्रोंमें आना जाना होता था। उस समयके सभी रसिक और प्रेमियोंसे व्यवहार था। परन्तु विशेष उल्लेख योग्य कवि गिरिधरदासजी अर्थात् भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके पिता बाबू गोपालचन्द्रजीका नाम है। उस समयके काशीनरेश भी इन्हें बहुत मानते थे। यह जैसे गम्भीर

विद्वान् थे, जैसे प्रतिभाशाली कवि थे, वैसे ही वाग्मी और विनोदप्रिय भी थे। बात बातमें श्लेष, मुद्रालंकार, शब्दालंकार आदि की बहार थी। कहावतें और दृष्टान्त जुबानपर रखे रहते थे। रोनी सूरतको हँसा देना इनका साधारण स्वभाव था। यह सदैव प्रसन्न रहा करते थे। आनन्द इनके रूपसे बरसता था। यह सच्चे आडम्बरशून्य भगवद्भक्त थे। दीनदयालु जैसा नाम था वैसे ही इनके गुण भी थे। दीनोंपर दया-का तो यह हाल था कि अपने सामनेका परसा भोजन भूखेके सामने रख देना और घरके भीतर जो कुछ मौजूद हुआ दीन दुखियोंको उठाकर दे डालना नित्यकी बात थी। कहते थे कि संन्यासीके पास संग्रहका क्या काम ? ऐसी दशा तो तब थी, जब मठ की मिल्कियत नीलाम हो गयी थी। गुरुभाइयोंने लड़कर बचाखुचा भी स्वाहा कर डाला था। धनहीनतामें इस दरजेकी उदारता थी, तो संग्रह क्या होता। परन्तु अपने जीवनमें मठधारियोंके दूषण अपनेमें न आने दिये। एक कौड़ी भी कुमार्गमें नहीं लगी। इनका चरित्र आदिसे अन्ततक निष्कलंक और आदर्श संन्यासीका था। यह जैसे स्वयं गुणवान् थे, वैसे ही गुणियोंका आदर भी करते थे। गुणियोंपर स्वयं निछावर हो जाते थे। कवियोंको यह बहुत मानते थे।

जब बावन बरसकी अवस्था हुई तभी इन्हें काशीसे क्षणमात्र भी विलग होना असह्य प्रतीत होने लगा। यह गायघाट छोड़ मणिकर्णिका-पीठके पास एक पेड़के नीचे रहने लगे। भगवती भागीरथीके तटपर तपस्या करने लगे। पहिले तीन बरस इन्होंने काशीके बाहर जाना बिलकुल छोड़ दिया, और उसी स्थानपर स्थायीरूपसे रहने लगे। उस समय काशीमें बाबू (पीछेसे राजा) शिवप्रसादका दौर दौरा हो चला था। शिक्षा विभागमें उनकी पुस्तकें चलने लग गयी थीं। आगरेके राजा लक्ष्मणसिंहने कविताका आरंभ किया था। बाबू तोतारामका काव्योदय पास ही था। अंग्रेज़ी सरकारसे भारतीय सिपाहियोंका

उसी समय घोर युद्ध हुआ। ब्रिटिश राज डगमगा रहा था। बाबू हरिश्चन्द्र अभी बालक थे। उनकी कविताका उषाकाल होनेको ही था कि इस कवि-संन्यासीका जीवनप्रदीप बुझनेको आया। गोस्वामी दीन-दयालुगिरि पचपन बरसकी अवस्थामें सम्वत् १६१५ विक्रमीकी निर्जला एकादशीको श्रीमणिकर्णिकापीठमें छप्पन विनायकसे कुछ ही दूर गंगातटपर अपना इह लौकिक लीला समाप्त करके शिवलोक पधारे।

इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं, अनुरागबाग और अन्योक्ति-कल्पद्रुम। श्रीकाशी-नागरी-प्रचारिणी सभाद्वारा हाथकी लिखी पुस्तकोंकी खोजमें विश्वनाथ नवरत्न, चकोरपंचक, दृष्टान्ततरंगिणी, अन्योक्तिमाला, काशी पंचरत्न, वैराग्य दिनेश, दीपक पंचक, और अन्तर्लापिका इन आठ पुस्तकोंका पता और लगा है। दृष्टान्ततरंगिणीकी रचना कविके ही अनुसार सम्वत् १८७६ की है। यही कविकी पहली रचना है जिस समय बीस बरसकी अवस्था थी। रचनाकी प्रौढ़तासे दोमेंसे एक बात स्पष्ट है, या तो कवि इतना प्रतिभाशाली था कि उसने कभी बालकवितामें ग्रंथ प्रणयन किया ही नहीं अथवा उसने अपनी बालकविताका अधिक प्रौढ़ होनेपर संशोधन किया होगा। सभाने इनकी अन्तिम रचना अन्योक्ति-कल्पद्रुमको इनकी पूर्व रचना अन्योक्तिमालाका ही परिवर्धित और संशोधित संस्करण माना है। कल्पद्रुमकी रचना मरनेके दो बरस पहले हो चुकी थी। यही उनका अन्तिम काव्यग्रंथ है।

दीनदयालुजीकी कविता

गोस्वामी दीनदयालुगिरिकी उत्तम शिक्षा उनकी कवितासे स्पष्ट होती है। लोकोक्तियाँ, दृष्टान्त एवं अन्योक्तियां तो लोकानुभवकी खानि हैं, इस बातकी गवाह हैं कि उनका अनुभव कितना व्यापक था, स्वभाव-

का उन्होंने कैसा विस्तृत परिशीलन किया था। वह काव्यरचनामें कितने समर्थ थे यह उनकी रचनाओंसे विदित है। जिसे हम उनकी बाल-कविता कहते वह दृष्टान्ततरंगिणी तो भीतरी परिपक्क और प्रौढ़ बुद्धिकी परिचायक है। काव्यरचनाकी शक्ति उनमें जबर्दस्त थी। उनका काव्यरथ सर्वाङ्ग पूर्ण था, इसीलिये जीवनपर्य्यन्त चलता रहा। उन्होंने नीतिपर अधिक कविता की है। शृङ्गाररसमय कविता अनुरागबागकी है, पर कविने भगवान् राधाकृष्णका शृङ्गार भी सुन्दरतासे वर्णन किया है। भोंडापन या अश्लीलता नहीं आने दी। श्री राधाकृष्णके चरणोंमें अनु-राग और भक्ति सम्बन्धी ही रचनाएं अनुरागबागमें हैं।

अन्योक्तिकल्पद्रुममें कविके विस्तृत लोकानुभवके साथ ही साथ एक संन्यासीके मुखसे निकली हुई अनुपम नीतिशिक्षा भरी हुई है। कविता प्रौढ़ विचारोंसे युक्त माधुर्य्य और प्रसाद दोनों गुणोंसे लबालब है। जैसा विषय है वैसे ही उपयुक्त छन्दोंका भी चुनाव हुआ है। अन्योक्ति कल्पद्रुममें कुंडलियोंकी ही अधिकता है। गोस्वामी दीन-दयालुगिरिके पहले ब्रह्मभट्ट गिरिधर कविरायने* नीतिशिक्षा कुण्डलियों-के द्वारा दी है। गिरिधर कविरायकी कविता है तो थोड़ी पर इनका

---

* गिरिधर कविरायका जन्म भोजपुरमें हुआ। जातिके ब्रह्मभट्ट थे। बाल्यावस्थामें घरसे निकल पड़े। हरद्वारमें शिक्षा हुई। वहांके ऋषिकल्प विदित गुरुके शिष्य थे। जन्म विक्रमी सम्वत् १४७२ में हुआ। साठ बरसकी अवस्थामें आमरण बालब्रह्मचारी रहकर बैसाख बदी ११ शनिवारको सम्वत् १५३२ में मरे। जीवनभर घूमते रहे। मजूरी आदि भिन्न भिन्न पेशोंसे जीवन बिताया। साधु वृत्ति थी। इनकी रचना कुण्डलिया ही हैं जो पूरी सौ भी नहीं हैं। विषय नीति है। हिन्दी संसारमें सबकी जुबानोंपर चढ़ी हुई हैं।

प्रचार इतना विस्तृत हो चुका है कि पंजाबसे लेकर पूर्वी विहार-तकके लोग कहावतकी तरह कहा करते हैं। श्री० दीनदयालुगिरिकी कुंडलियां भी लोकप्रिय हो चली हैं। गिरिधर कविरायकी रचना सीधा नीतिमय उपदेश है, पर दीनदयालुजी दूसरोंके वहाने उपदेश देते हैं। हिन्दीमें यह कल्पद्रुम सबसे बड़ी अन्योक्तिमय रचना है, इसमें कविकी लेखनीसे कोई भाव छूटा नहीं है। इनकी कुण्डलिया पढ़िये। साफ जान पड़ता है कि मानों कोई संन्यासी किसी पदार्थ-को सम्बोधन करके उपदेश कर रहा है। संन्यासीका और कर्त्तव्य ही क्या है? उपदेष्टा सीधा सादा कटु उपदेश भी कर सकता है, परन्तु उपदिष्ट वा शिष्यको ग्राह्य भी तो होना चाहिये! कड़वे वचन शिष्यको भी क्या अच्छे लगते हैं? विष्णुशर्म्माने राजकुमारोंको कहानी (विशेष निबन्धना अन्योक्ति) द्वारा शिक्षा दी थी। अच्छे उपदेशक इस ढंगसे वात कहते हैं कि सुननेवाले दोषी होते हुए भी बुरा न मानें, वरन् अपने आचरणको उपदेशके अनुसार सुधारें। अन्योक्ति अलङ्कार द्वारा इस संन्यासीकी शिक्षाएँ भी अपूर्व हुई हैं। कवि फूलसे कहता है

"प्यारे करै गुमान जनि सुन प्रसून सिख मोरि।
तो समान यहि बागमें फूलि झरे हैं कोरि॥
फूलि झरे हैं कोरि, वहोरि किते विनसैहैं।
या वहार दिन चार गये पुनि ग्रीषम ऐहैं॥
बरनै दीन दयाल न कर सारंगहि न्यारे।
तो गुन जाननिहार वड़े हितकारक प्यारे॥"

प्यारे फूल, मेरी सीख सुन, अपने रूप रङ्गपर, सुगन्धपर, कोमलता-पर गर्व न कर। तुझमें यह सब गुण हैं सही, पर यह कोई अनोखी वात तो नहीं है। तेरे जैसे फूल इस वागमें फूल फूलकर एक नहीं करोड़ों झड़ गये हैं और करोड़ों आगे भी झड़ जायँगे, और फिर यह वसन्तकी ऋतु

भी तो सदा रहनेकी नहीं ! थोड़े ही दिनोंमें तो गरमी आती है, लुएं चलेंगी, गरमीकी लपटोंमें यह रूप रंग, यह सुगन्ध, यह कोमलता तो कहां, फूलनेके दिन ही नहीं रहेंगे। फिर दो दिनके जीवनमें क्यों गर्व करता है और भौरोंका निरादर क्यों करता है। इन्हें अलग न कर, यही तो तेरे गुणोंको जाननेवाले और तेरा हित करनेवाले हैं, यही तो घूम घूमकर तेरा यश-सौरभ फैलाते हैं।

कवि फूलकी ओटमें वस्तुतः गुणीको सम्बोधन करता है। प्यारे गुणवान्, अपने गुणों पर गर्व न कर, क्योंकि यह गुण तेरी अनोखी सम्पत्ति नहीं है। इस संसारमें करोड़ों गुणी तेरे जैसे हुए और मर गये, होंगे और मर जायँगे। यह जीवन तो दो दिन का है! मरे पीछे नाम नाम रह जायगा। अपने गुण ग्राहकोंका निरादर न कर, इनसे व्यर्थ झगड़े न कर क्योंकि यही तेरे गुणोंका आदर करनेवाले हैं, तेरा हित यही करते हैं, तेरा जस यही फैलाते हैं।

अन्योक्तिद्वारा दिया हुआ उपदेश बहुत व्यापक होता है। इस फूलकी अन्योक्तिमें गवैये, चित्रकार, शिल्पी, आदि गुणवान ही नहीं वरन धनवान काव्य प्रेमियोंके लिये भी उपदेशकी गुञ्जाइश है। विषय तो केवल इतना ही है कि गुणीको गुण ग्राहकोंका निरादर न करना चाहिये, परन्तु उसकी विशद व्याख्या अनेक अवसरों और अनेक प्राणियोंपर उसका प्रयोग करा सकती है।

अन्योक्ति आदि आनुषंगिक अलंकारोंका वर्णन कल्पद्रुमकी कविता के प्रसङ्गमें अन्यत्र किया गया है।

———

अन्योक्तिकल्पद्रुमका पिंगल

अपने अर्थसे लोकोत्तर आनन्द देनेवाले और रसको प्रकट करनेवाले वाक्य या वाक्योंको काव्य कहते हैं। शब्दयोजना और वाक्यविन्यासकी दृष्टिसे काव्य गद्य और पद्य, और गद्य पद्य मिश्रित तीन प्रकारके हुए। अन्योक्तिकल्पद्रुम पद्य काव्य है। इसमें पांच प्रकार के छन्दोंका प्रयोग हुआ है। उन छन्दोंके लक्षण यहां देते हैं।

दोहा—साधारण लक्षण यही है कि पहले और तीसरे चरणोंमें तेरह तेरह मात्राएँ हों, दूसरे और चौथे चरणोंमें ग्यारह ग्यारह मात्राएँ हों और अन्त्यानुप्रास हों। कुंडलियाकी आदिमें दोहा और दोहेके अन्तिम चरणको दोहराता हुआ रोला छन्द होता है। रोला छन्दका ठीक उलटा लक्षण है कि उसके प्रत्येक चरणमें पहली ग्यारह मात्राओंपर यति हो, फिर तेरह मात्राओंपर चरणान्त। यही सोरठाके पहले दूसरे पदोंके लक्षण हुए जो दोहाके उलटनेसे ही वन जाता है। इसलिये रोला और सोरठा दोनोंके एक ही लक्षण हो गये, सोरठेका पदान्त रोलेका यत्यन्त हो गया। अतः पढ़नेमें दोनोंमें कोई अन्तर न होना चाहिये। परन्तु अन्तरके लिये सोरठा और रोला दोनों गवाह हैं। अतः दोहा और रोला छन्दोंकी गति निश्चित होनी चाहिये। इसपर अधिक विस्तार न करके दोहेके लक्षणपर ग्वाल कविका रचा निम्नलिखित दोहा दे देना ही हम पर्य्याप्त समझते हैं।

दोहा

"षटकल चौकल जगन विनु पुनि इक कल फिर दोइ,
पुनि षट, चौइक इमि दुदल दोहा सगती होइ।

दोहेमें ६ + ४ + १ + २ = १३ मात्राओंके पहले और तीसरे चरण और

६+४+१=११ मात्राओंके दूसरे चौथे चरण होने चाहिये। दूसरे चौथे चरणोंका अन्त गुरु लघुके तुकमें होना चाहिये। तात्पर्य्य यह कि दोहेके पहले और तीसरे चरणमें छः मात्राओंका एक साथ, चार मात्राओंका जो जगण न हो एक साथ, और एक मात्राका अलग और दो मात्राओंका एक साथ उच्चारण हो सके। दूसरी ओर चौथे चरणमें छः मात्राओंका एक साथ, चार मात्राओंका जो जगण न हो और गुर्वन्त हो एक साथ और अन्तिम एक मात्रा लघुका उच्चारण अलग हो सके। सोरठेमें दोहेके पहले तीसरे चरण दूसरे चौथे, और दूसरे चौथे चरण पहले तीसरे हो जाते हैं।

रोला छन्दका लक्षण साधारणतया पिङ्गल ग्रंथोंमें यही देते हैं कि २४ मात्राओंका एक पद हो जिसमें पहली ११ मात्राओंपर यति हो और १३ मात्राओंपर चरणान्त। परन्तु जबतक रोलेकी गति भी निश्चित न हो तबतक रोलेके एक पदमें सोरठेके एक दलका और सोरठेके एक दलमें रोलेके एक पदका लक्षणोंसे अन्तर्भाव होता रहेगा। इसलिये हमारी समझमें रोला छन्दके एक पदकी गति इस प्रकार होनी चाहिये।

रोला

छकल दुकल त्रिकलान्त, मत्त तेरह यति भनिये,
त्रिकल छकल दुइ दुकल, सकल चौबिस कल गनिये
ग्यारह तेरह मत्त, एक पद रोला जानिय,
छन्द सोरठा एक, दलहिंते भेद पिछानिय।

अर्थात्, ६+२+३=११ मात्राओंपर यति, फिर ३+६+२+२=१३ मात्राओंपर चरणान्त, अर्थात् कुल २४ मात्राओंका एक एक चरण हो। इस प्रकारके चार चरणोंका एक रोला छन्दा होता है।

कुण्डलिया छन्दका लक्षण यह है कि एक दोहेके बाद एक रोला छन्द हो, और दोहेके प्रथम चरणकी आदिके कुछ शब्द रोलाके अन्तमें, और दोहेका चौथा चरण रोलाकी आदिमें दोहराये जायँ और भरसक अर्थ भी भिन्न हों। इस तरह कुंडलियामें दोहेके दो दल और रोलेके चार पद मिलाकर कुल छः चरण हुए।

आदिके पद अन्तमें और अन्तके पद आदिमें दोहराया जाना सिंहावलोकन यमकालंकार कहलाता है। सिंह चलता है तो अपने पीछे फिर फिरकर देखता चलता है। इसी उपमापर इस शब्दालंकारका नाम सिंहावलोकन रखा गया है। यह अलङ्कार तो कुण्डलियाका अङ्ग हो गया है। और सभी अलङ्कारोंसे शून्य हो तो भी कुण्डलिया सिंहावलोकनसे शून्य देखी नहीं जाती।

घनाक्षरी दंडकको मनहरण भी कहते हैं। इसमें चार चरण होते हैं, प्रत्येक चरणमें कुल ३१ अक्षर होते हैं जिनमेंसे पहले सोलह अक्षरोंपर यति होती है। इसकी रचनामें भी गति सौष्ठवका कविगण विचार करते हैं। गुरु लघुका कोई क्रम निश्चित नहीं है। जैसे,

"अमल अनूप जल मनिमै निसेनी जासु
थलको बखान सुतो हुतो नरवरमें।"

मालिनी छन्दके प्रत्येक चरणमें पन्द्रह अक्षर होते हैं, पहले आठ अक्षरोंपर यति* होती है। पहले छः अक्षर, और दसवें और तेरहवें अक्षर

---

* पिङ्गलकी कुछ परिभाषा जानने योग्य है। कला वा मात्रा सबसे कम समय लेनेवाले एक ह्रस्व स्वरको कहते हैं। इसे लघु भी कहते हैं। दो लघु वा दो मात्राओंका दीर्घ स्वर या गुरु हुआ। लघुका चिन्ह ।,

लघु होते हैं। शेष सात अक्षर गुरु होते हैं। इस प्रकार पंद्रह पंद्रह अक्षरोंके चार चरण होते हैं। इसकी गणना पिङ्गलमें गण छन्दोंमें होती है। एक चरणका रूप यह है—

सु न हु प थि क भारी, कु. ज लागी द वा री
। । । । । । S S, S । S S । S S
= मालिनी
न ग ण न ग ण म ग ण य ग ण य ग ण

सवैया छन्दकी अनेक जातियां और उपजातियां हैं। उनमेंसे केवल एक जाति दुर्मिल वृत्तका प्रयोग अन्योक्ति कल्पद्रुममें हुआ है। इसके एक एक पदमें चौबीस अक्षर होते हैं और हर तीसरा अक्षर गुरु होता है। इसकी गिनती गण छन्दोंमें की जाती है। सगणका तीसरा अक्षर गुरु होता है। यह छन्द आठ सगणोंका होता है। उदाहरणके पदमें १२ वां और २३ वां अक्षर नियमतः लघु माना गया है।

छलवं चकही नचले पथया हिप्रती तसुसं बलचा हनोहै

। । S । । S । । S । । S । । S । । S । । S । । S

गुरुका S है। तीन तीन अक्षरोंके लघुगुरुक्रमसे आठ रूप हुए। SSS=मगण, ।।।=नगण, ।SS=यगण, S।।=भगण यह शुभ है। S।S=रगण, ।।S=सगण, ।S।= जगण, SS।=तगण, यह चार अशुभ हैं। "यमाताराजभानसलगं" इस सूत्रमें क्रमसे गणोंके और लघुगुरु-
। S S S । S । । । S
के सांकेतिक नाम और पूरे रूप आ गये हैं। इसे कण्ठ कर लेनेसे आठोंके रूप कण्ठ रहते हैं।

अन्योक्ति कल्पद्रुमकी कविता

उत्तम कविताकी जान चमत्कार है जो व्यंग्यकी प्रधानताके साथ साथ व्यंजित रसों और भावोंपर और शब्दशक्तिसे सङ्गत विशेष अलङ्कारों-पर निर्भर है। विना चमत्कारके अलङ्कार वह गहने हैं जिनमें चमक दमक नहीं है, वह मोती हैं जिनमें आब नहीं है। साधारण अलङ्कारोंके नाते तो कल्पद्रुममें कुण्डलियोंके प्रसादसे सिंहावलोकन सारी पुस्तकमें भरा पड़ा है। अनुप्रासोंकी तो बहार है। जहां तहां अनेक अलङ्कारोंका भी अन्तर्भाव है। परन्तु इस ग्रन्थका आदिसे अन्ततक मुख्य विषय ध्वन्याव-लम्बित अन्योक्ति है। इस ग्रन्थके पाठकोंके सुभीतेके लिये काव्यके और अङ्गोंका स्पर्शमात्र करके अन्योक्ति अलङ्कारका हम विशद वर्णन करेंगे।

शब्द-शक्ति तीन हैं, (१) अभिधा, जो प्रसंगानुसार शब्दका वाच्यार्थ अर्थात् वह अर्थ प्रकट करती है जो कोषके अनुसार मुख्य हो, (२) लक्षणा, जो वाच्यार्थकी असङ्गतिकी दशामें, उससे सम्बन्ध रखने-वाला कोई और अर्थ प्रकट करे, और (३) व्यंजना, जो वाच्यार्थ (primary sense) और (secondary sense) लक्ष्यार्थसे कोई सम्बन्ध न रखता हुआ, किसी व्यंग्यार्थ (suggested sense) अर्थात् भिन्न विशेष अर्थको प्रकट करे।

मोरपच्छको मुकुट सिर उर तुलसीदल माल,
जमुनातीर कदम्ब ढिग मैं देख्यो नंदलाल। (दास)

इस उदाहरणमें, पच्छ, दल, माल, तीर आदिके अनेक अर्थ होते हैं, परन्तु उनके पास आये हुए शब्द उनके वाच्यार्थको निश्चित कर देते हैं। जैसे, तीरके साथ यमुना शब्दके आ जानेसे तीरका अर्थ तट ही समझा

जायगा, वाण नहीं। इस दोहेके अर्थ बतानेमें प्रत्येक शब्दके एक ही एक वाच्यार्थ काममें आते हैं। यह इन शब्दोंकी अभिधाशक्ति है।

"हमारी मनोकामना फल गयी," "कन्हैयाकी बांसुरी बजी" इन वाक्योंमें मनोकामना कोई वेलि नहीं है, और बांसुरी अपने आप नहीं बजती, परन्तु मनोकामनाकी बेलिसे उपमा देते हैं, अतः पूरा होना ही "फलने" का लक्षितार्थ है। उसी तरह बांसुरी कन्हैयाने बजाई इस लक्ष्यार्थके लिये "कन्हैयाकी बांसुरी बजी" इस वाक्यका प्रयोग हुआ है। उपमाके कारण फलनेके वाच्यार्थसे, और भाववाच्यके कारण बजनेके वाच्यार्थसे सम्बन्ध है।

पुनि आउब एहि बेरियाँ काली,
असकहि मन बिहँसी इक आली। (तुलसी)

सखी देर होनेसे चिन्तित होकर सीताजीसे कहती है कि "कल फिर इसी वेला आवेंगे" साथ ही यह भी व्यंजित करती है कि "अब आज देर हो गयी है, चलो"। उधर भगवान् राजचन्द्रजीको भी सुनाकर व्यंजित करती है कि "कल इसी वेला आप भी आइयेगा।" यह व्यंजितार्थ या व्यंग्यार्थ असली वाक्यके वाक्यार्थ या लक्ष्यार्थसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। ध्वनिसे अनेक अर्थ प्रकट होते हैं।

रीति ग्रन्थोंमें इन तीनोंके अनेक भेद प्रभेद हैं। व्यंग्यकी मुख्यता-पर ही ध्वनि अवलम्बित है और आचार्योंने ध्वनिको ही उत्तम काव्य माना है। जो उदाहरण दिया गया है उसमें वाच्यार्थ गौण है पर व्यंग्यका विलक्षण चमत्कार है। यही "ध्वनि" है।

गुणीभूत व्यंग्य वा जिसमें व्यंग्य प्रधान न हो वाच्यार्थ ही प्रधान हो, अर्थात् चमत्कारका अभाव हो, मध्यम काव्य माना जाता है। यही

वह व्यंग्य है जो सर्वसाधारणमें मामूली बोलचालमें "विङ्ग बोलना" कहलाता है। बूढ़ेके लोभपर कहा जाता है "देखो, मायाके मोहमें मरता है, धन छातीपर लादकर ले जायगा", यह व्यंग्य है, परन्तु वाच्यार्थ अधिक स्पष्ट और जोरदार है। तात्पर्य्य यह कि धन कोई मरनेपर साथ नहीं ले जाता, यह मरनेको आया तब भी धनके लोभमें फँसा है। इसमें व्यंग्य का कोई चमत्कार नहीं है, और न प्रधानता ही है। वाच्यार्थ इतना साधारण है कि मामूली मुहावरा बन गया है। लक्षणा और व्यंजना शक्तिसे बने हजारों मुहावरे नित्यकी बोलचालमें प्रचलित हैं।

काव्यका आत्मा चमत्कार है, उसका सूक्ष्म शरीर रस है, उसके अन्तःकरण भाव हैं, उसकी बाहरी इंद्रियां और शरीरके अवयव शब्द-शक्ति हैं जिनका यथा स्थान और सुडौल होना ध्वनि है। शब्दशक्तियोंके आनुषंगिक अलंकार उसके आवश्यक वस्त्र हैं, गुणीभूत व्यंग्य उपवस्त्र है। शेष अलंकार आभूषण हैं। गुण काव्यशरीरका स्वाभाविक ओज और सौन्दर्य है। दूषण उस सौन्दर्य्य में कमी वा कुरूपता है।

मनुष्यके अन्तःकरणमें (१) प्रेम, (२) हँसी, (३) शोक, (४) क्रोध, (५) उत्साह, (६) भय, (७) घृणा, (८) विस्मय और (९) निर्वेद यह स्थायी रूपसे रहते ही हैं। बाहरी कारणोंके (आलम्बन और उद्दीपन विभावोंके) उपस्थित होते ही यह स्थायी भाव प्रकट हो जाते हैं। (आलम्बन) शत्रुको देखकर और उसकी ओरसे तिरस्कारके भाव उसकी बातों और इशारोंसे (उद्दीपन) पाकर हममें क्रोध प्रकट होता है। हम तदनुकूल आचरण करने लग जाते हैं। (अनुभाव) आँखें लाल हो गयीं, ओठ फड़कने लगे, प्रतीकारके लिये हम दौड़ पड़े, इन सभी बातोंसे रौद्ररसकी पूर्त्ति हुई। इनका वर्णन रौद्र रसका चित्र है। इन क्रियाओंके समय हृदयमें ग्लानि, घृणा आदि कई भावोंका संचरण

हो रहा था। ग्लानि घृणा आदि संचारी भाव हैं। आँखोंका लाल हो जाना, ओठोंका फड़कना अनुभाव (या सात्विक भाव) हैं। ऊपर लिखे नवों स्थायी भावोंका पूर्ण विकास क्रमशः शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त इन नवों रसोंमें होता है। काव्यका उद्देश्य इन्हींका चमत्कारिक लोकोत्तर आनन्द दायक वर्णन है। "भाव भेद रस भेद अपारा", कवियोंने इनपर बहुत विस्तार किया है। यहाँ इतना ही परिचय कराना संभव है। काव्यप्रेमी जन रीति ग्रंथका अनुशीलन स्वयं करेंगे।

आचार्य्योंने ध्वनिको उत्तम, गुणीभूत (अप्रधान) व्यंग्यको मध्यम और चमत्कारहीन अलङ्कारोंको अधम काव्य माना है। परन्तु कवि अपनी रचनामें काव्यके सभी अंगोंसे काम लेता है। अन्तर केवल मुख्य और गौणका है। यद्यपि अन्योक्ति कल्पद्रुममें काव्यांगके नाते अन्योक्ति अलङ्कारोंकी ही प्रधानता है, तथापि यह वह अलङ्कार नहीं हैं जिनका काम बिना व्यंग्यसे ध्वनित हुए चल सके। अलङ्कारोंमें अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रस्तुतांकुर, पर्य्यायोक्ति, ब्याजस्तुति, आक्षेप, समासोक्ति और सूक्ष्मालंकार आदि साम्यप्रधान हैं, क्योंकि इनमें कुछ समान बातें व्यंग्यसे ध्वनित होती हैं।

अप्रस्तुत प्रशंसामें जिस विषयको वर्णन करना है (=प्रस्तुत) उसे किसी दूसरे विषय (=अप्रस्तुत) की आड़में कहते हैं। बात इस ढंगसे कही जाती है कि शब्दोंसे तो और कोई विषय सुननेमें आवे, पर उसका अर्थ उसी विषयपर सहज ही घट जाय जिसपर कविको कहना मंजूर है। यह कथन पाँच तरहपर हो सकता है।

(१) सारूप्य निबंधना, जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुतमें सारूप्य वा समानता हो। उदाहरण—

तोरै चोंच न कीर! तू यह पंजर है लोह।
खुलिहै खुले कपाटके, तजि कुल्हियाको मोह। (दीनदयालु)

प्रस्तुत विषय जीव, उसका भव बंधन, उसके अज्ञानके किवाड़े, उसका सांसारिक विषयोंका मोह है। अप्रस्तुत विषय शुक, उसका पींजरा, उसके कपाट, उसका कुल्हियाका मोह है। दोनोंमें सारूप्य है, समानता है। अप्रस्तुतके वर्णनसे प्रस्तुत सहज ही लक्षित हो जाता है।

(२) सामान्य निबंधनामें कहते तो हैं किसी सामान्य विषय पर, पर बात जाकर किसी विशेष विषयपर घटती है। प्रस्तुत "विशेष" है। अप्रस्तुत "सामान्य" है।

द्वैज दिवसके चन्दको बन्दत सबै सप्रीति।
कहत कलंकी पूर ससि अहो क्रूर जगरीति॥ (दीनदयालु)

यह एक साधारण बात है कि दूजके चंद्रमाको लोग नमस्कार करते हैं और पूरे चाँदको कलंकी कहते हैं। संसारका यह कठोर नियम है कि बड़प्पनको सह नहीं सकता। ईर्षा द्वेषके मारे कलंक लगाता है निन्दा करता है। इस सामान्य कथनसे किसी विशेष बड़े आदमीको जिसकी कोई विशेष व्यक्ति ईर्षावश व्यर्थ निन्दा करता है प्रबोध दिया गया है। प्रस्तुत है विशेष व्यक्ति और अप्रस्तुत है पूर्ण चन्द्रमाकी साधारण दशा।

(३) विशेषनिबन्धना में कहते हैं किसी विशेष विषयपर परन्तु अभीष्ट होता है किसी सामान्य बातका कहना।

आये काम न सांकरे रत्नक खरे अपार।
रतनाकर अरु चन्दके हुते सकल हितकार॥ (दीनदयालु)

यहाँ एक विशेष कथन है कि सागरको अगस्त्य ऋषिसे और

चन्द्रमाको राहुसे किसीने न बचाया यद्यपि इनके सभी हितैषी और रक्षा करनेवाले मौजूद थे। यहाँ इस विशेष कथनसे यह सामान्य बात बतायी गयी कि प्रारब्ध ऐसा बलवान है कि सभी हितैषी और रक्षकोंके मौजूद होते भी विपत्ति टाले नहीं टलती, कोई संकटमें काम नहीं आ सकता। रत्नाकर और चन्द्रमाका संकट विशेष है। परन्तु अप्रस्तुत है। प्रारब्धका बलवान होना और संकटमें अच्छेसे अच्छे हितैषीका काम न आना यह सामान्य नियम है जो प्रस्तुत है। नीति शिक्षा वा साधारण स्वभावचित्रणवाली कहानियाँ और उपन्यास सभी विशेषनिबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा हैं।

(४) हेतुनिबंधनामें देखनेमें तो कारणका वर्णन होता है परन्तु वास्तविक अभिप्राय होता है कार्य्यका वर्णन।

मूरख हृदय कठोर लखि हारे करि करि मान❀।
तातें मज्जत जलबिखें अहो कठोर पखान॥ (दीनदयालु)

पत्थर! तुम बड़े लज्जाशील हो, कि कठोरतामें जब मूर्खका हृदय बाजी मार ले गया, तो मारे लाजके तुम जलमें डूब मरे। प्रकटमें तो पत्थरके जलमें डूब जानेका कारण बताया गया है, परन्तु प्रस्तुत विषय कार्य्य है, अर्थात् मूर्खके हृदयकी कठोरता जो पत्थरसे भी बढ़ी हुई है उसीका वर्णन यहाँ अभीष्ट है।

(५) कार्य्य निबन्धनामें देखनेमें तो कार्य्यका वर्णन होता है, परन्तु वास्तविक अभीष्ट होता है कारणका वर्णन।

❀ यहाँ व्याजस्तुति भी है। मूर्खके हृदयकी कठोरतासे पत्थर भी हारकर लाजों डूब मरा। मूर्खके हृदयकी बहानेसे निन्दा की गयी है। हेतूत्प्रेक्षा भी है।

भीखन दुसह सुभाव तुअ सुनो अनल जगमाहिं ।*
करत कोटि अपराध हू तऊ तजत कोउ नाहिं ॥ (दीनदयालु)

हे अग्ने ! तुम्हारा स्वभाव दुःसह और भीषण है, तुम करोड़ों अपराध करते हो तो भी जगत्में कोई तुम्हें नहीं त्यागता। सब लोग तुम्हें चाहते हैं। यह तो कार्य्य कथन हुआ। परन्तु प्रस्तुत विषय है अग्निकी अत्यन्त उपयोगिता जो उसकी लोकप्रियताका कारण है, जिससे भीषणता आदि करोड़ों अपराधोंको लोग भूल जाते हैं।

बहुतसे कवियोंने केवल सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसाको "अन्योक्ति" कहा है, परन्तु दास कविने मूल अलङ्कारोंके वर्णनमें अप्रस्तुत प्रशंसा प्रस्तुतांकुरादिकी जगह अन्योक्ति ही कहा है और यों परिभाषा दी है—

अन्य उक्ति औरहि कहै औरहि के सिर डारि।
सुक सेमर को सेइबो, अजहूँ तजहि विचारि॥

अन्योक्ति कल्पद्रुममें भी अप्रस्तुत प्रशंसाके पाँचों भेद आ गये हैं, परन्तु कहीं न तो अप्रस्तुत प्रशंसाका शीर्षक है, न उसके अवान्तर भेदोंका। इससे स्पष्ट है कि कल्पद्रुमकारको भी अन्योक्तिका व्यापक लक्षण ही मान्य था।

प्रस्तुतांकुरमें जो बात मुख्य रीतिसे कही जाती है, उसीमें और भी अंकुर निकलता है, कोई दूसरी बात भी साथ ही उतने ही महत्व-की होती है। इसमें दो बातें अभिप्रेत होती हैं और दोनों प्रस्तुत वा प्रधान होती हैं।

---

* यहाँ व्याजस्तुति भी है कि अग्नि तुम कितने बड़े उपयोगी हो !

हेरे काग कठोर रट कीरहि दूखत काह ।
सुनिके इनकी मधुर धुनि मोहत है नरनाह ॥ (दीनदयालु)

इस दोहेमें कागकी निन्दा और शुककी स्तुति दोनों बराबरका दरजा रखती है । दोनों प्रस्तुत हैं ।

समासोक्तिमें जिस विषयका वर्णन करते हैं वह तो स्पष्ट ही होता है, परन्तु उस वर्णनमें किसी छिपे हुए ऐसे विषयका भी बोध होता है जो प्रस्तुत नहीं है । प्रस्तुतसे अप्रस्तुतका बोध होना, अप्रस्तुत प्रशंसा-का उलटा हुआ । जैसे,

स्वामी सुन्दर सीलयुत अपनो गुनी कुलीन ।
ताहि त्यागि परनाह सठ सेवति कहा मलीन ॥ (दीनदयालु)

यह उक्ति कुलटा स्त्रीके प्रति है । यही प्रस्तुत विषय है । परन्तु यह उस कुमतिके प्रति भी सम्बोधन है जो भगवान्को छोड़कर संसारसे अनुरक्त है ।

व्याजस्तुतिमें कभी निन्दाके बहाने स्तुति की जाती है और कभी स्तुतिके बहाने निन्दा की जाती है । "व्याजस्तुति" में दोनोंका बोध होता है । तो भी कई कवियोंने व्याजनिन्दा एक अलग अलंकार माना है । कभी कभी व्याजस्तुति और अप्रस्तुत प्रशंसाका एक दूसरेमें अन्तर्भाव भी हो जाता है । यह बात पिछली पादटिप्पणियोंमें दिखायी जा चुकी है । उदाहरण—

कासी हांसी मुनि करैं सुनि करनी तव एक ।
दासी तपसी एक सी दे गति बिना विवेक ॥ (दीनदयालु)

हे काशी ! मुनि लोग तुम्हारे अविवेकपर तुम्हारी हँसी करते हैं कि

तुम्हें दासी और तपसीमें कोई अन्तर ही नहीं समझमें आता, दोनोंको एक सी गति देती हो। यह निन्दाके बहाने काशीकी स्तुति है जहाँ नीचसे नीचको मुनिदुर्लभगति मिलती है।

आक्षेप तीन प्रकारका होता है (१) उक्ताक्षेपमें कहते हैं कि यह काम अवश्य करो, परन्तु ढंगसे मना करनेका अर्थ निकलता है। उदाहरण—"आप शौकसे मन माना कीजिये, मैं भी अपने शरीरका मनमाना अन्त कर लूँगा।" (२) निषेधाक्षेपमें मना करते हैं, कि यह काम न करो, परन्तु ध्वनित व्यंग्यसे अर्थ निकलता है कि करो। उदाहरण "जाइये आप मुझे बिलकुल भूल जाइये, मैं भी अपने जानी दुश्मनोंमें आपका नाम लिख लूँगा।" (३) व्यक्ताक्षेपमें अपनी कही बातको काटकर और ज़्यादा जोरदार बात कहते हैं। उदाहरण। "उन दोनोंकी तो दाँत काटी रोटी है, नहीं, बल्कि यों कहना चाहिये कि वह दो तन एक प्राण हैं।"

पर्य्यायोक्तिमें लक्षणाकी रीतिसे (१) युक्तिसे घुमा फिराकर बात कही जाती है, या (२) किसी युक्ति या बहानेसे काम करना दिखाया जाता है। जैसे,

सीताहरण तात जनि कहिय पितासन जाय।
जौ मैं राम तो कुल सहित कहिहि दशानन आय॥

"अर्थात् मैं कुल समेत रावणका वध करूँगा" इस उक्तिको दृढ़ प्रतिज्ञापूर्वक घुमा फिराकर परन्तु अधिक जोरदार शब्दोंमें व्यक्त किया गया है।

देखन मिस मृग विहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़ी प्रीति न थोरि॥

बागके मृग, पक्षी, पेड़ आदि देखनेके बहाने सीताजी बारम्बार लौटती हैं और बारम्बार भगवान्‌की छबि देखती हैं, तृप्ति नहीं होती।

दास कविने अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रस्तुतांकुर, समासोक्ति, व्याज-स्तुति, आक्षेप और पर्य्यायोक्ति, इन छः अलंकारोंको अन्योक्ति अलंकारोंमें गिना है। इनके भीतरी उपभेदोंको लेकर कुल चौदह अलंकारोंकी गणना अन्योक्तिमें हुई। दासके यह दोहे स्मरणीय हैं—

कारज मुख कारन कथन, कारनके मुख काज।
कहुँ सामान्य विशेष है, होत ऐसही साज॥
कहूँ सरिस सिर डारिकै कहै सरिस सों बात।
अप्रस्तुत परसंसके पाँच भेद अवदात॥
कवि इच्छा जेहि कथनकी प्रस्तुत ताको जानु।
अनचाहो कहिवे परो अप्रस्तुत सो मानु॥
अप्रस्तुतके कहत ही, प्रस्तुत जान्यो जाइ।
अप्रस्तुत परसंस तेहि कहतसकल कविराइ॥
दोऊ प्रस्तुत होत जहँ, प्रस्तुत अंकुर लेखि।
समासोक्ति प्रस्तुतहि तें अप्रस्तुत अवरेखि॥
इनमें स्तुति निन्दा मिले व्याजस्तुति पहिचान।
सबमें यह योजित किये होत अनेक विधान॥
जहाँ बरजिये कहि इहै अवसि करो यह काज।
मुकर परत जेहि बातको, मुख्य वही जहँ राज॥
दूपि आपने कथनको फेरि कहै कुछ और।
आच्छेपालंकारको जानो तीनों डौर॥
कहिय लच्छना रीति लै कछु रचना सों बैन।
मिसु करि कारज साधिवो, परजायोक्ति सु ऐन॥

अन्योक्ति कल्पद्रुममें सूक्ष्मालंकार श्लेषालंकार और मुद्रालंकारके भी विशेष उदाहरण कविने दिये हैं। श्लेषालंकार तो भरा पड़ा है।

ध्वनिके भेदोंमें सूक्ष्मालंकारकी वस्तुव्यंग्यमें गणना होती है। चतुर लोग आपसमें कुछ संज्ञा ठहराकर इशारोंसे जो बातें करते हैं, वह सूक्ष्मालङ्कार है।

कासों हनिये कोपको, कापै पैये ज्ञान।
गुरू मौन सैनहिं कह्यो, छिति छ्वै कै धरि कान॥ (दीनदयालु)

शिष्य गुरुसे पूछता है, भगवन् क्रोधको कैसे जीते और ज्ञान कहांसे पावे तो गुरुवर इशारेसे धरती छूकर और कानपर हाथ धरकर विना कुछ बोले ही उत्तर दे देते हैं। धरतीको क्षमा और कानको श्रुति कहते हैं। तात्पर्य्य यह कि क्रोधको क्षमासे जीते और ज्ञान वेदोंसे प्राप्त करे।

मुद्रालङ्कारको प्रायः आचार्य्योंने शब्दालङ्कारोंमें गिना है। मुद्रालङ्कारमें पद्यका अर्थ तो कुछ और होता है परन्तु प्रयुक्त शब्दोंमें किसी एक जातिके अनेक नाम आ जाते हैं। कल्पद्रुमकी चौथी शाखाकी ६६,६७ (२५४-२५५) यह दो कुंडलियाँ उदाहरण हैं। यहाँ एक और उदाहरण हम देते हैं—

की करपा करतार जा मन फल सो आ मिलो
सेव कदम कचनार पीपर रत्ती तून तज।

इस दोहेका भाव तो यह है कि भगवानकी कृपासे मनोरथ फला, हे कच्ची बुद्धिकी नारी, अब तू अपने पतिपर रत्तीभर भी सेवा न छोड़, उनके चरणोंकी सेवा करती रह। परन्तु कीकर, पाकर, ताड़, जामुन,

फालसा, आँवला, सेव, कदम, कचनार, पीपल, रत्ती, तून, तज, इन तेरहों पेड़ोंके नाम लगातार आगये बीचमें किसी अव्ययका भी व्यवधान न पड़ा।

श्लेषालंकारको कवियोंने शब्दालंकारोंमें भी गिनाया है। एक ही पद्यमें शब्दशक्तिसे दो या अधिक स्वतंत्र विषयोंको प्रस्तुत करना, दो या अधिक अर्थ निकलना, श्लेषालंकार है।

कूपहिं आदर उचित है नहीं गुनिन को हेय,
अंतर गुन को ग्रहन करि फिर फिर जीवन देय। (दीनदयालु)

कूप कुएंको भी कहते हैं और राजाको भी। कु=पृथ्वी, प=जो रक्षा करे, इसतरह कूपका अर्थ भूप भी है। कुएंको उचित है कि गुन (रस्सी) वालोंका आदर करे, तिरस्कार न करे, अपने भीतरसे फिर फिर गुन (रस्सी) के सहारे पानी (जीवन=पानी) दिया करे। राजाके पक्षमें यों अर्थ करेंगे कि राजाको उचित है कि गुणवानोंका आदर करे उनका अपमान न करे। उनके भीतरी गुणोंको समझकर उनको फिर फिर जीविका दिया करे।

अनुप्रास प्रायः लोग जानते हैं, इससे यहाँ उसका विशेषवर्णन नहीं किया गया। हमने अन्यत्र कहा है कि गोस्वामी दीनदयालुगिरिकी कविता माधुर्य्य और प्रसाद गुणसे युक्त है। गुणोंकी चर्चा भी यहाँ थोड़ी होनी चाहिये।

जिस कवितामें अनुस्वार-संयुक्त वर्ण अधिक आवें, टवर्गको छोड़ वाकी सभी वर्गके कोमल अक्षर प्रयुक्त हों, समास न वहुत लम्बे हों न वहुत छोटे, प्राचीनोंकी रीतिसे भिन्न रीति अपनी बुद्धिकी उपज से हो परन्तु दोषोंसे मुक्त हो, रुचिकर मीठी मीठी वातें हों, अर्थ न गूढ़ ही हो, न अत्यन्त प्रकट ही हो, जिसे मूढ़ न समझे पर समझदारोंके

लिये क्लिष्ट न हो, ग्राम्यादि दोषोंसे मुक्त हो, करुणा, शृङ्गार वा हास्यरस-का वर्णन हो, तो वह कविता माधुर्य्यगुण पूर्ण कविता समझी जायगी।

जिस कवितामें उद्धत कठोर अक्षर और टवर्गका प्रयोग हो, जिसमें समासोंकी भरमार हो, विषय वर्णनमें उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ उतार चढ़ाव हो, जो अन्वयके बलसे पढ़े जानेपर चतुरोंको ही समझमें आवे, जिसमें रौद्र, भयानक, वीर और वीभत्स रसोंका विशेष वर्णन हो, वह कविता ओजस्विनी या ओजगुणसे भरी कही जाती है।

जिस कवितामें मनको भानेवाले अक्षर पड़ें, चाहे किसी वर्गके हों, क्लिष्टादि दोषोंसे बची हो परन्तु अर्थ गहरा निकलता हो, तौ भी सहज ही समझमें आ जाय, समास थोड़े हों या न हों, जिसमें सभी रसोंका वर्णन हो, विषय रोचक हो, उस कविताको प्रसादगुणयुक्त कविता कहते हैं।

आचार्य्योंने इन्हीं तीनों गुणोंको मुख्य ठहराया है। इन्हींमें और गुणोंका अन्तर्भाव कर दिया है।

गुण और दोष दोनोंके अनेक भेद हैं। उन सबका यहाँ वर्णन करना संभव नहीं है। आजकल समालोचनाके प्रेमी प्रायः चाहते हैं कि अच्छे अच्छे कवियोंके भी दोष अवश्य दिखाये जायँ। परन्तु सभी आचार्य्यों-ने दो बातें मानी हैं, एक तो यह कि नितान्त निर्दोष कविता होनी असम्भवप्राय है। दूसरे यह कि प्रसंगवश दोष आ भी जायँ तो उन्हें दोष नहीं गिना जाता। शब्दालंकारोंमें तो दोषोंसे बचना अत्यन्त कठिन है। दीनदयालु गिरिजी बड़े प्रतिभाशाली कवि और अच्छे पंडित थे। उनके दोष भी अदोष ही हैं। प्रसंगानुसार उनपर टिप्पणी की गयी है।

अन्योक्ति कल्पद्रुमकी रचना चमत्कारसे भरी है। शब्दावली

जोरदार है। भाषा रसीली और मनोहर है। भाव पवित्र और ऊँचे हैं। कोई आपत्तिजनक दोष नहीं हैं। माधुर्य्य और प्रसादगुण प्रधान हैं। नीतिकी अत्यन्त अनुपम और सरस शिक्षा है। अनुप्रास और श्लेषालंकारकी तो बहार है। कल्पद्रुममें कविकी अद्भुत प्रतिभा झलकती है। शब्दोंपर कविका विस्तृत अधिकार प्रायः प्रत्येक पद्यमें प्रमाणित होता है। जिन्होंने व्रजभाषा कविताके तत्वपर गम्भीर विचार नहीं किया है, संभव है कि उनकी निगाहोंमें शब्दोंका निरर्थक तोड़ मरोड़ भी आवे, परन्तु इस प्रकारके दोष भी कल्पद्रुममें अत्यन्त थोड़े निकलेंगे। नाम कल्पद्रुम अत्यन्त उपयुक्त है क्योंकि इकट्ठे इतने विषयों पर इतनी अन्योक्तियां किसी दूसरे ग्रंथमें देखनेमें नहीं आतीं। प्रायः सभी तरहके विषयोंका इस ग्रंथमें समावेश हुआ है।

अन्योक्ति कल्पद्रुमका रचनाप्रबन्ध

अन्योक्ति कल्पद्रुमको कविने स्वयं चार शाखाओंमें बाँटा है। पहली शाखामें अधिकांश ऋतुसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंका वर्णन है। दूसरीमें खनिज, पेड़, पक्षियों और पशुओंका वर्णन है। तीसरीमें प्रायः मनुष्य जातियोंका वर्णन है। चौथीमें अधिकांश मानसिक भावों और विकारोंका वर्णन है। पहलीमें ६६, दूसरीमें ८२, तीसरीमें ३७ और चौथीमें ८४ पद्य हैं। कविने प्रत्येक शाखाकी पद्यसंख्या अलग गिनी है। इस संस्करणमें वर्णक्रम सूचीके सुभीतेके लिये आदिसे अन्ततक लगातार संख्या रखी है, परन्तु शाखाविभाग ज्योंका त्यों रखा है। इस तरह पूरी पोथीमें कुल २७२ पद्य हैं। क्रमसूचीमें पद्यसंख्या दी गयी है जो सहज ही मिल जायगी।

बड़ी पियरी, बनारस शहर।
बसन्त ५, १६८३।

रामदास गौड़

श्रीगणेशायनमः

अन्योक्ति कल्पद्रुम

दोहा

यह कल्पद्रुम बुध-सुखद अरथ अनूप उदार ।
विरच्यो दीनदयाल गिरि अभिमत-फल दातार ॥१॥

कल्पद्रुम=कल्पवृत्त, जो स्वर्गमें है और जिसकी छायामें जो कामना करें वह तुरन्त पूरी हो जाती है। अभिमत=मन चाहा, कवि ने इस पुस्तकका नाम कल्पवृत्त रखा है इसलिये इससे फल भी मनचाहा मिलना चाहिये। कल्पवृत्तसे इसमें विशेपता यह है कि यह अन्योक्तियों-का कल्पवृत्त है, इसलिये यह दरिद्रोंको नहीं वरन् बुध जनको ही सुखदायक है, क्योंकि इसमें (अनूप) विलत्तण और (उदार) व्यापक अर्थ निकलते हैं जो बुधजनोंको प्रिय हैं। इसे रचा भी है (दीनदयालु) दीनों पर दया करनेवाले गिरिने। यों तो गिरि अनेक पेड़ उपजाते हैं पर दीनदयालुगिरिने अन्योक्तिका कल्पवृत्त उपजाया है। सम-अभेद-रूपका-लंकार की पूर्त्ति इन अन्तके दोहोंसे होती है—

यह अन्योक्ति सुकल्पद्रुम साखा वेद बखानि ।
विरची दीनदयाल गिरि कवि द्विजवर सुखदानि ॥२६५॥
कुण्डलिया सुघनाच्छरी सुखद सुदोहा वृत्त ।
हरै सवैया मालिनी मिलि पंचामृत चित्त ॥२६६॥

इस पेड़में चार शाखाएं हैं और इसमें पांचों छन्दरूपी अमृतके मिले जुले स्वरसका संचार होता रहता है। सम्पूर्ण ग्रंथ प्रबन्ध इसी सम

अभेद रूपकका चित्र है। इन अन्योक्तियोंमें प्रायः कोई भाव नहीं छूटा है। सभी विषयोंपर अन्योक्तियां हैं। इस ग्रंथसे मनचाही अन्योक्तियां मिलती हैं।

मङ्गलाचरण

कुंडलिया

वंदौ मंगलमय विमल व्रज सेवक सुख देन।
जोकरि-वर-मुख मूक ही गिरा नचाव सुखेन॥
गिरा नचाव सुखेन सिद्धिदायक सब लायक।
पसुपतिप्रिय हियबोधकरन निरजर गननायक॥
बरनै दीनदयाल दरसि पदद्वंद अनंदौं।
लंबोदर मुदकंद देव दामोदर वंदौं॥२॥

इस मंगलाचरणमें श्लेषसे (१) गणेश जी और (२) कृष्ण भगवान दोनोंकी वन्दना है। व्रजसेवक=(१) यात्री, बटोही (व्रज=मार्ग), (२) व्रजवासी। करिवर मुख=(१) सुन्दर हाथीका मुख, (२) मुखको श्रेष्ठ और मंगलमय करके। पशुपति प्रिय=(१) शिवजी के प्यारे, (२) शिवजी जिसको प्यारे हैं। हिय-बोध-करन-निरजर= हृदयमें बोध उपजानेवाले देवता गणेशजी। निरजरगननायक (निर्जर बुढ़ापारहित=देवता) देवताओंका नेतृत्व करनेवाले भगवान् कृष्ण। लम्बोदर=(१) गणेशजी, (२) अपने पेटको जिसने बढ़ा लिया है। दामोदर= (१) इंद्रियोंका निग्रह करनेवालोंमें श्रेष्ठ (दामाद्दामोदरंविदुः) वा पेटमें ऊखल बँधवानेवाले वा विश्वको अपने उदरमें रखनेवाले। मुदकंद= आनन्दके मेघ। मूक ही गिरा नचाव सुखेन=सहज ही गूंगेके मुखके भीतर वाणीको नचावे। ("मूकं करोति वाचालम्"। "मूक होहिं वाचाल।" "सारद दारु नारिसम स्वामी। राम सूत्रधर अन्तरजामी।

जेहिपर कृपा करहि जनजानी। कवि उर अजिर नचावहिँ बानी"।
तुलसीदास।)

इस श्लेपमें व्रजका अर्थ मार्ग हिन्दीमें अप्रसिद्ध है और यात्रीके अर्थमें व्रजसेवक शब्दका कवियोंने प्रयोग नहीं किया है, यह अवाचक दोप है, पर श्लेपकी आवश्यकतासे क्षम्य है।

कल्पद्रुम

दानी हौ सब जगत में एकै तुम मंदार।
दारन दुख दुखियान के अभिमत-फलदातार॥
अभिमत-फलदातार देवगन सेवैं हित सों।
सकल संपदा सोह छोह किन राखत चित सों॥
बरनै दीनदयाल छाँह तव सुखद बखानी।
ताहि सेइ जो दीन रहै दुख तौ कस दानी॥३॥

मन्दार=कल्पवृक्ष। दारन=नाशक, फाड़नेवाले। "ताहिसेइ जो दीन रहै दुख तौ कस दानी"=उसकी छाँहके तले जो दीनको दुःख रहे, वा दीन दुःखमय (मुजस्सिम तकलीफ़, दुखावतार) बना रहे तो फिर तुम दानी ही कैसे!

मन्दार (धतूरे) के सेवन करनेवाले भगवान् शंकरको प्रस्तुत करके, अथवा बलि, कर्ण या हातिम सरीखे भारी दानियोंको लक्ष्य करके यह अन्योक्ति कही गयी है।

षटऋतु-वर्णन

वसन्त

हितकारी ऋतुराज तुम साजत जग आराम।
सुमन सहित आसा भरौ दलहि करौ अभिराम॥
दलहि करौ अभिराम कामप्रद द्विज गुन गावैं।
लहि सुबास सुखधाम बातपर ताप नसावैं॥
बरनै दीनदयाल हिये माधव धुनि प्यारी।
स्रवन सुखद सुखबैन बिमल बिलसै हितकारी॥४॥

समयके अनुकूल आचरण करनेवाला धर्मात्मा राजा समय (ऋतु) पर हित करता है जगत्को सुख (आराम) देता है। उसके प्रति लोगों-के भाव (सुमन) अच्छे होते हैं, लोगोंके हृदयमें भलाई की आशा (आसा) भर जाती है। वह फौजको (दलहि) खुश (अभिराम) रखता है। ब्राह्मण (द्विज) उसके गुण गाते हैं कि वह सबके मनोरथों-को (पूरा कामप्रद) करता है। सब लोग अच्छी तरह (सुवास) रहते हैं, सबके घर सुख (सुखधाम) विराजता है। उस राजाकी हित प्रिय मनोहर बातें (बातवर) दुःखोंको मिटा देती हैं। उसके हृदयमें भगवान् माधवकी प्यारी ध्वनि, भगवान्की कही गीताके, कानोंको सुखदायक विमल हितकर सुन्दर वचन (सुख बैन) विराजते हैं।

वसन्तको ऋतुओंका राजा कहते हैं वसन्त पक्षमें यहाँ शब्दार्थमात्र देते हैं।

ऋतुराज=वसन्त। आराम=बाग। सुमन=फूल। आसा=दिशा। दल=नयी पत्तियां। कामप्रद=कामका उद्दीपन करनेवाले, कामदेवके

सखा । द्विज = पत्ती । सुवास = सुगंध । वातवर = उत्तम वायु । ताप = गरमी । माधव धुनि=मधु-संपृक्त मीठी ध्वनि । "हिये माधव ... हितकारी" = कोयल भँवरे और भाँति भाँतिके पत्तियोंकी मीठी ध्वनि । कानोंको सुख देनेवाली पवित्र हितकारी बातें तुम्हारे उर अन्तर (हिये) में विलास करती हैं। सारी सृष्टिमें तुम्हारे प्रभावसे मीठी बातोंका व्यवहार स्वाभाविक हो जाता है।

यहां धर्म्मपरायण समयानुकूल आचरण करनेवाले राजा और वसन्तका श्लेष है। इस अन्योक्तिमें प्रस्तुत विषय धर्मात्मा राजा और वसन्त दोनों ही हैं। प्रस्तुतांकुर अलंकार है। धर्म्मात्मा राजाका आदर्श उपस्थित करना भी अप्रस्तुत है, परन्तु ध्वनित है। इस दृष्टिसे इसमें समासोक्ति भी है।

लूटे साखिन अपत करि सिसिर सुसजे बसंत ।
दै दल सुमन सुफल किये सो भल सुजस लसंत ॥
सो भल सुजस लसंत सकल द्विजगन गुन गावैं ।
अमल कमल जल जीव हंस हरि बर सुख पावैं ॥
बरनै दीनदयाल दुसह दुख तें द्रुम छूटे ।
भे तुरन्त विकसंत अन्त अतिसै जे लूटे ॥ ५ ॥

साखि=मित्र, पेड़। अपत=बरबाद, पत्रहीन। सुमन=अच्छामन, फूल। सुफल=आप्तकाम, अच्छे फलयुक्त। हरिवर=हरिभक्त, कोयल। द्रुम=कुबेर, पेड़। "शाखिन" शब्द पेड़के लिये साभिप्राय है।

(पतझड़) शिशिरके द्वारा जिनकी शाखाएं लुट गयी थीं, (अपत) पत्तियोंसे विहीन कर दी गयी थीं, उन पेड़ोंको सुन्दर नयी कोपलें, फूल और सुन्दर फल देकर वसन्तने सजाया है, उसका यह सुयश अच्छी तरह फैल गया है। इस कीर्त्ति-विस्तारका प्रमाण यह है कि

सभी (द्विजगण) पक्षी कल्लोल कर रहे हैं, उसके गुन गा रहे हैं। निर्मल कमल, जलचर, हंस और (हरिबर) कलकंठ कोयलें सुख पाती हैं। दीन दयालु कहते हैं कि पेड़ तो पतझड़के असह्य दुःखसे छूट गये। जो पहले एकदम लुटकर बरबाद हो गये थे अन्तको तुरन्त ही (विकसन्त) फूलने फलने लगे। यहाँ कुराज्य (पतझड़) से दुःखी संसारकी सुराज्य (वसन्त) से सुधरी हुई दशा दिखाई है, जो ध्वनित अप्रस्तुत है। शिशिरकी निन्दा और वसन्तकी स्तुति दोनों प्रस्तुत हैं। प्रस्तुतांकुरके साथ ही साथ समासोक्ति है।

तौलों है ऋतुराज नहिं कोकिल काग बिचार।
स्याम स्याम रँग एकसे सोहत एकै डार॥
सोहत एकै डार काक कछु बाक न बोलै।
ऐंड़ो रहै निसंक तासु हाँसी करि डोलै॥
बरनै दीनदयाल नहीं गुन आवत जौ लों।
काक कोकिला ज्ञान जात नहिं जानो तौ लों॥ ६॥

ऐंड़ो=ऐंठा, अकड़ा। वसन्तमें कोयल कूकती है, तब कौए और कोयलका अन्तर प्रकट हो जाता है, नहीं तो जबतक कोयल नहीं बोलती कौआ उसीके रूपका पक्षी होनेसे न बोलकर सबको धोखा देता है, अकड़ता फिरता और कोयलकी हँसी उड़ाता रहता है।

नहीं गुन आवत=गुन (परखनेमें) नहीं आता। (यहां आवतकी जगह पावत, लावत, बल्कि दीसत होता तो बहुत अच्छा होता। इससे पहलेके छपे दोनों संस्करणोंमें आवत ही पाठ है।)

भले बुरे एक ही रंग रूपके होते हैं, परन्तु देश, काल और गुणसे पहचाने जाते हैं। कोयल और कौएके विशेष सारूप्यसे भले बुरे

आदमियोंका सामान्य सारूप्य एवं पहचान बतायी है। विशेष निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा है।

ग्रीष्म

ग्रीषम तुम ऋतुराजके पाले दीन सुसाखि।
तिनको दाहत हौ कहा दावानलमें माखि॥
दावानलमें माखि जारि फिर राखि उड़ाई।
उन दीननकी दसा देखि नहिं दाया आई॥
बरनै दीनदयाल द्विजन तापत क्यों भीखम।
मित्रहु तुमरे संग चढ़ैं वृष दारुन ग्रीषम॥ ७॥

माखि=रूठकर, अमर्षके कारण। (माखे लखन कुटिल भइ भौंहें। तुलसी।) भीखम=भयंकर। मित्र=सखा, सूर्य्य। वृष=बैल, वृषराशि जिसमें स्थित सूर्य्य सबसे ज्यादा तपता है। दारुन=फाड़नेवाला, कठोर।

गरमीको उपालंभ है कि जिन जिन दीनोंसे वसन्तने सुलूक किया, वसन्तसे ईर्षाके जलनसे, उन दीनोंको तुम वृथा जलाते हो, दया नहीं आती। दीनदयालु पूछते हैं कि तुम द्विजोंको क्यों सताते हो? मित्रोंके साथ भी तुमने मुरौअत न की। इतने कठोर हो कि तुम्हारी संगतके फलसे वह भी बैलपर सवार हुए। (सूर्य्य भी वृषराशिमें चढ़े, और खूब तपे।) बैलपर चढ़ाना=अपमान करना।

किसी ईर्षालुके अधिकार पा जानेपर और पहलेके अधिकारीद्वारा किये अच्छे सुलूकोंको बन्द कर देने और ईर्षावश अत्याचार करनेपर यह अन्योक्ति कही गयी है। नया अधिकारी ईर्षावश पुराने अधिकारीके मित्रोंका अपमान करता है और उसके कृपापात्रोंपर कड़ाई करता ही है। यही सामान्य रीति प्रस्तुत है। ग्रीष्मकी दारुणताका विशेष वर्णन अप्रस्तुत है। विशेष निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा है।

सुखिया जे जे तब रहे लहि ऋतुराज उमंग।
ते सब अब दुखिया भए हे ग्रीषम तुव संग॥
हे ग्रीषम तुव संग साखि सर सूखि गए हैं।
विकल कमल द्विजराज सकल छबिछीन भए हैं॥
वरनै दीनदयाल रह्यो जगप्रान जु मुखिया।
सोऊ तपि दुखदानि भयो जो हो अति सुखिया॥ ८॥

द्विजराज=राजहंस। जगप्रानजु मुखिया=जगत्प्राणोंमें मुख्य सूर्य्य।

हे ग्रीष्म, जो जो पहले वसन्तका आनन्द पाकर सुखी थे, तुम्हारी संगत पाकर अब दुखी हैं। पेड़ तालाब सूख गये, दुबले हो गये, कमल और हंस घबरा गये हैं, सबका रंग रूप फीका पड़ गया है। यहाँतक कि जगदाधार संसारको सुखी करनेवाले सूर्य्य भी तुम्हारी बदौलत तप रहे हैं और दुखदायी हो गये हैं। नये बड़े परन्तु ईर्षालु अधिकारीकी मातहतीमें पुराने अफ़सर आप दुःखी रहते हैं और अपने प्रभुकी नीतिका अनुसरण करनेको लाचार होकर औरोंको वह भी दुःख पहुँचाने लगते हैं। यह सामान्य स्वाभाविक दशा है। वही विशेष निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा।

पावस

पावस ऋतु सुखदानि जग तुम सम कोऊ नाहिं।
चपलाजुत घनस्याम नित विहरत हैं तव माहिं॥
विहरत हैं तव माहिं नीलकंठहु सुखदाई।
अंबर देन सुहाय द्विजनकी करत सहाई॥
बरनै दीनदयाल सकल सुख तो सुखमा-बस।
एकै हंस उदास रहे काहे हे पावस॥ ९॥

पावस=प्रावृट्, वरसात। चपला=विजली, राधा। घनस्याम= कालेमेघ, भगवान् कृष्ण,। नीलकंठ=नीले कंठवाला एक पक्षी, भगवान् शंकर। अम्बर=आकाश, कपड़ा। द्विजन=पक्षीगण, ब्राह्मण गण। सुखमा=परम शोभा। हंस=राजहंस पक्षी, ज्ञानी।

वरसात जगत्में सबको सुखदायी है। इसमें राधाकृष्ण और भगवान् शंकर दोनों विहार करते हैं।

जन्माष्टमी, हरितालिका तीज श्रावणी आदि वरसातमें ही पड़ती है।

विजली वादल और नीलकंठ पक्षी भी सुखी रहते हैं। आकाश वादलोंसे घिरा सुहावना रहता है और पक्षियोंको चारेकी वहुतायत रहती है। ब्राह्मणोंको वस्त्रादिका मन भाया दान मिलता है। वरसातके सौन्दर्य्यपर सभी मोहे रहते हैं। परन्तु हे पावस, एक हंस ही उदास रहते हैं, इसका क्या कारण है?

पानीके गदलेपनसे हंस उदास रहते हैं। चौमासेमें वहुधा ऐसे देशोंमें चले जाते हैं, जहां निर्मल जल मिलता है। अत्यन्त दक्षिण देशमें वर्षाका चौमासा प्रायः कार्तिकसे माघ तक होता है।

धन और सांसारिक विषयोंके सुखका प्राचुर्य्य है। परन्तु (हंस) ज्ञानीको विषयसे गँदला जीवन (जल) पसन्द नहीं है। प्रकृत तत्व-ज्ञानी विषयसुखसे, इस त्रिगुणात्मक संसारसे, उदासीन ही रहता है। उसे इसमें कोई मजा नहीं। यहां वरसातका वर्णन प्रस्तुत और हंस (प्रकृत तत्वज्ञानी) की व्याजस्तुति अप्रस्तुत है। समासोक्ति एवं व्याजस्तुति है।

शरद

पाई छबि द्विजराज कवि गुरुवर अंवर सोह।
दरे दरद हे सरद हिय करे मोद संदोह॥

करे मोद संदोह धरे गुन सज्जन केरे।
कुवलय खरे विकास भरे भासैं चहुँ फेरे॥
बरनै दीनदयाल जगत के तुम सुखदाई।
करिये कहा प्रसंस हंस विलसैं छवि पाई॥१०॥

द्विजराज=चन्द्रमा। कवि=शुक्र। गुरुवर=बृहस्पति। अम्बर=आकाश। दरे=पीस डाले। दरद=पीड़ा। शरद=कुआर कातिकके महीनेवाली बरसातके बादकी ऋतु। सन्दोह=आधिक्य, बहुतायत, समूह। कुवलय=नीले कमल।

शरदके गुण सज्जनोंकेसे हैं। चन्द्रमा, शुक्र, बृहस्पति आदि ज्योतिर्मय ग्रहोंसे निर्मल आकाशकी शोभा बढ़ रही है! सज्जनोंके साथ भी द्विजराज (ब्राह्मण) और कवि छवि पाते हैं और बड़े लोग (गुरु) अच्छे अच्छे कपड़े (वर अम्बर) पहने शोभा देते हैं। शरदने पीड़ाओंको नष्ट करके हृदयमें आनन्द भर दिया। (बरसातमें वातप्रकोप होनेसे शरीरमें भाँति भाँतिकी पीड़ा होती है। शरदमें यह कष्ट नहीं होता।) (खरे) सुन्दर नीले कमल खिले हुए चारों ओर दीखते हैं। तुम तो जगत्के सुखदायी हो, कहां तक प्रशंसा करें, पावसमें जो उदास रहते थे वह हंस भी तुम्हारी छविपर मोह कर आनन्द कर रहे हैं। सज्जनके चरित्रकी निर्मलतापर मुग्ध हो तत्त्वज्ञानी संसारसे विरक्त भी उसके साथ रहना पसन्द करते हैं। विशेष निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा है।

हेमन्त

आवत ही हेमन्त तव कम्पन लगो जहान।
कोक कोकनद भे दुखी अहित भये जगप्रान॥

अहित भये जगप्रान सङ्ग जबहीं तुव पाए।
दुखद भये द्विजराज मित्र निज तेज घटाए॥
बरनै दीनदयाल दीन द्विजपाँति कँपावत।
कामिन को भो मोद एक ही तो जग आवत॥११॥

कोक=चक्रवाक, चकवा पक्षी। कोकनद=लाल कमल। अहित=बुरा चाहनेवाले, वैरी, (आहिताग्नि=स्थापित अग्नि) आग। द्विजराज=चन्द्रमा, ब्राह्मण, विद्वान। मित्र=सूर्य्य, दोस्त। द्विजपांति=दांतोंकी पांती, साधारण ब्राह्मणोंकी पंक्ति।

दुर्जन हेमन्त! तुम्हारे आते ही दुनियाँ काँपने लगी। अच्छे लोग, चकवा कमल आदि दुखी हुए, और सबको जलाने वाला वैरी अग्नि जगत्का प्राण प्यारा हो गया। यह तुम्हारी सङ्गतिका प्रभाव है। पण्डित, चन्द्रमा, सुखकी जगह दुख देने लगे, और जो सबके हित मित्र सूर्य्य थे उनका तेज घट गया। ग़रीबोंको, बेचारे दांतोंको, तुम कँपा डालते हो। हां, तुम्हारे आनेसे कामी जरूर खुश हुए।

हेमन्तका वर्णन प्रस्तुत है, दुर्जनकी निन्दा अप्रस्तुत है। समासोक्ति है।

शिशिर

गाये सुजस समूह तव कविराजन अवदात।
फैली महिमा रावरी महिमण्डलमें ख्यात॥
महिमण्डलमें ख्यात फाग रागनको गावैं।
शिशिर सु आप प्रसाद जगत सबही सुख पावैं॥
बरनै दीनदयाल कुन्द मिस तो जस छाये।
एक विचारे पात तिन्हैं उतपात लगाये॥१२॥

अवदात=उज्ज्वल। ख्यात=मशहूर। उतपात=उपद्रव, झड़ना।

कविराजोंने तुम्हारे उज्ज्वल यश गाये। भूमण्डलमें महिमा प्रसिद्ध है। यहां तक कि फागके रागोंमें सभी गाते हैं। तुम्हारे प्रसादसे सभी सुख पाते हैं। यह कुन्दके फूल नहीं फूले हैं, तुम्हारे उज्ज्वल यश भूतल-पर अङ्कित हैं। एक पत्ते ही बेचारे ऐसे हैं जिनके साथ तुमने उत्पात कर रखे हैं। यह अन्योक्ति किसी यशस्वी प्रभुपर कही गयी जो किसी अत्यन्त छोटी प्रजाको उजाड़ रहा हो। इससे यह उपदेश ध्वनित होता है कि जिसका इतना यश हो उसे अत्यन्त छोटे लोगोंको उजाड़ना उचित नहीं है।

शिशिर वर्णन प्रस्तुत है। उपदेश अप्रस्तुत है। समासोक्ति अलङ्कार है।

पञ्चतत्त्वविषये अन्योक्तिः

आकाश

आपै व्यापक जगतके आपु सरिस कोउ नाहिँ ।
सकल लोक रचना सजै हे अकाश तुव माहिँ ॥
हे अकाश तुव माहिँ मित्र द्विजराज विराजैं ।
तुम्हैं बीच सुचि जानि आनि घनस्यामहु छाजैं ॥
बरनै दीनदयाल जाइ जस बरनों कापै ।
गहो न सङ्ग उपाधि रहो अति निरमल आपै ॥ १२ ॥

मित्र=दोस्त, सूर्य्य । द्विजराज=श्रेष्ठ ब्राह्मण, चन्द्रमा । घनस्याम= भगवान् कृष्ण, काले बादल । उपाधि=जिस कारण या संयोगसे प्रकृति बदल जाय, औरका और दीखे । जैसे आकाश अपरिमित और निराकार है, पर घड़ेके या कोठरीके भीतर घड़े और कोठरीकी उपाधिसे परिमित और उन्हींके आकारसे साकार हो जाता है । तो भी घड़े और कोठरीकी परिमिति और आकृति हमारी कल्पनामात्र है । वस्तुतः आकाश परिमिति और आकृतिमे कभी प्रभावित नहीं होता ।

जिस परमहंसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया है यह प्रस्तुतः उसीके प्रति सम्बोधन है । आकाश जैसे सबमें मिला और सबसे अलग है उसी तरह जनकादि ब्रह्मज्ञानी भी संसारसे मिले और संसारसे अलग हैं । सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा है ।

जहँ धरि पीत पराग पट बरसम कियो विहार ।
तेहि बन पवन जती भयो रमत रमाये छार ॥

रमत रमाये छार घोर ग्रीषम दव लागे।
दुखमें मधुकर सखा सङ्ग सवही तजि भागे॥
वरनै दीनदयाल रही छवि कुसुमाकर भरि।
दूलह वन्यो समीर रम्यो पट पीरो जहँ धरि॥ १४॥

पीले पुष्परज (पराग) पहनकर दूल्हेकी तरह वायुने जिस वनमें विहार किया था, वहीं आज ग्रीष्मकी आगका सताया ख़ाक और राख रमाये वैरागी वना घूम रहा है। समयका कैसा फेर है कि आज इस दुःखमें न भौंरा उसका सङ्गी है, न वसन्त। सभी साथ छोड़कर भागे। वायुकी शोभा वसन्त भर रही जव कि वह दूल्हा वना फिरता था। पवनकी विशेष दशा वर्णन करके कवि वस्तुतः मनुष्यके संन्यासी होनेकी अवस्थाका वर्णन करता है। विशेष निवन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा है।

जिन तरु को परिमल परसि लियो सुजस सव ठाम।
तिन भञ्जनकरि आपनो कियो प्रभञ्जन नाम॥
कियो प्रभञ्जन नाम वड़ो कृतघन वरजोरी।
जव जव लगी दवागि दियो तव झोंकि झकोरी॥
वरनै दीनदयाल सेउ अव खल थल मरु को।
लै सुख सीतल छाहँ तासु तोख्यो जिन तरु को॥ १५॥

जिन पेड़ोंके सुवास (परिमल) सत्सङ्गमें सव जगह यशस्वी वनके फिरा उन्हींको तोड़कर प्रभञ्जनके नामसे वदनाम हुआ। जिसकी ठण्डी छांहमें रहता था उसे ही दावाग्नि लगनेपर झँकोरे दे देकर आगमें झोंक दिया। अव तो वृक्षहीन मरुभूमि रह गयी। अय खल! इसी मरुभूमिमें रहा कर तेरे अपकारका यही फल है।

यशकी उपमा फलनेवाले सुगन्धसे देते हैं। "छायामें रहना"

रक्षामें रहनेके लिये मुहाविरा है। बरजोरी (बल+जोरने, जोड़ने, लगानेकी क्रिया, वा बल जोड़ने, लगानेवाला।)=जबरदस्त, बल-पूर्वक। कृतघन=कृतघ्न, किये हुए उपकारको मेटनेवाला, अपनेसे भलाई करनेवालेसे ही बुराई करनेवाला।

अपकारी जिस पत्तलमें खाता है उसीमें छेद करता है, जिससे लाभ उठाता है, उसीकी हानि करता है। इस कृतघ्नताका फल भी उसे बुरा मिलता है। कृतघ्न बिना विपत उठाये नहीं रहता। विशेष निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा है।

लागी भूति अगेह नित अलिगन सिख्य विसेख।
सरल साल भंजत मरुत करनी खल मुनिवेख॥
करनो खल मुनिवेख फिरै भरमत सब जग को।
नहीं छमामें रहै अधर पथ गहै कुमग को॥
बरनै दीनदयाल बनो जग प्रान विरागी।
जम आसा तें रमै अहो बिरही दुख लागी॥१६॥

भूति=धूल, भस्म। अगेह=जिसका कोई ठहरनेका स्थान न हो, गृह-त्यागी। अलिगन=भौंरे, सखियां। सिख्य=शिष्य, चेले चेली। सरल=देवदारु, सीधा। साल=सालका पेड़, घर। छमा=धरती, सहन। अधर=अन्तरिक्ष, नीचेका। कुमग=बुरी राह, धरतीकी राह (कु= पृथ्वी, मग=मार्ग।) जग-प्रान=(१) जगत् जिसका प्राण है, अर्थात् दुनियादार। (२) जगत्का जो प्राण है, वायु जो प्राणोंसे भी अधिक अनमोल है। जम-आसा=(१) मृत्युकी आशा। (२) यमकी दिशा अर्थात् दक्षिण दिशा।

पवनकी देहमें धूल लगी है, उसके ठहरनेकी जगह नहीं है, भौंरे उसके शिष्य हैं, मुनिका वेष बनाये हुए है, परन्तु उसकी करनी खलों

की सी है, वह सीधी शाखाओंको, देवदारु और शालके पेड़ोंको तोड़ डालता है, सारे जगत्में घूमता फिरता है, जगत्को (चौ वाई वह वह-कर दिशा ज्ञान सम्बन्धमें) भरमाता रहता है। धरतीपर नहीं रहता, अन्तरिक्षकी राहसे धरतीकी ओर बहता है, यह वायु जो जगत्का प्राण है, वैरागी बना तो फिरता है (परन्तु दुष्ट इतना बड़ा है कि) विरहीको सतानेके लिये (और सता सताकर मार डालनेके लिये) दक्षिण दिशामें बहता है।

पवन वस्तुतः बडा खल है, जगत्को ठगनेके लिये वैरागी मुनिका-रूप बनाये हुए हैं, भस्म रमाये है, चेलियां साथ हैं, सीधे साधे भले लोगोंपर रोब गांठता और ठगता फिरता है, इसमें क्षमा नहीं है, नीच और बुरे मार्गमें चलता है, वास्तवमें यह ऐसा दुनियादार है कि जगत् में ही इसका जी (प्राण) लगा रहता है, और विरहीका ऐसा घोर वैरी है कि उसे तो सताकर मार ही डालना चाहता है। पवनकी खलता और दम्भ लेकर सामान्य दम्भी ठगोंपर विशेष निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा है।

अनल

भीखन दुस्सह सुभाव तुव सुनो अनल जग माहिं।
करत कोटि अपराध हो तऊ तजत कोउ नाहिं॥
तऊ तजत कोउ नाहिं बगर पुर नगर जरावत।
हित सों बल्लभ मानि तुम्हें ढूंढ़न को जावत॥
बरनै दीनदयाल तेज मय करैं निरीखन।
तुम बिन सरै न काज जदपि जग हौ अति भीखन॥१७॥

बगर=(प्रवण) महल, (विकिरण) फैलकर। बल्लभ=प्यारा, मित्र।

निरीखन=निरीक्षण, देखना। भीखन=भीषण, भयानक। अर्थ और भाव स्पष्ट है। कार्य्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा।

जल

हे जल वेग-तरङ्ग तें करै विलग मति मीन।
ये तो तेरे विरह तें ह्वैहैं प्रान-विहीन॥
ह्वैहैं प्रान-विहीन देखि दसरथ को बानो।
प्रिय को देख्यो नाहिं प्रान को कियो पयानो॥
बरनै दीनदयाल नहीं जिन प्रेम किये पल।
ते किमि जानैं पीर वियोगीजन की हे जल॥१८॥

बाना=अङ्गीकृत धर्म्म, रीति। अर्थ और भाव स्पष्ट है। मछली और वियोगी, जल और प्यारे सारूप्य हैं। परन्तु विशेष निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा है। अप्रस्तुत विषय प्रियका वियोग सामान्य है। प्रस्तुत विषय जलका मीनसे वियोग विशेष है।

भूतल

भूतल तो महिमा बड़ी फैल रही संसार।
छमासील को कहि सकै सहत सकलके भार॥
सहत सकलके भार धराधर धीर धरे हो।
पारावार अपार धार सिर क्रीट करे हो॥
बरनै दीनदयाल जगो जग है जस ऊजल।
सबकी छमत गुनाह नाह तुम सबके भूतल॥१९॥

धराधर=पहाड़, शेषनाग, विष्णु। पारावार=समुद्र। क्रीट=किरीट, एक तरहका सिरका भूषण जो पगड़ीके स्थानमें राजा लोग पहनते हैं। ऊजल=उज्ज्वल, सफेद। नाह=नाथ।

अर्थ स्पष्ट है। क्षमाशील मनुष्य और भूतलका सारूप्य है। भूतल अप्रस्तुत है, क्षमाशील व्यक्ति प्रस्तुत है, सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा।

दिवाकर

लीने आभा आपनी हे अम्बक आधार।
दीजै दरसन प्रगटिकै तम दुख दलो अपार॥
तम दुख दलो अपार निसाचर गाजि रहे हैं।
भूत दीप खद्योत उलूक बिराज रहे हैं॥
बरनै दीनदयाल कोकनद कोकहुँ दीने।
कब हैहौ हरि उदय तुमै त्रिन लोक मलीने॥ २०॥

अम्बक आधार=आंखके आधार, आंखको प्रकाश देनेवाले। प्रकाश-मात्रके आधार भगवान् भास्कर हैं। अतः आंखके भी वही आधार हैं। कोकनद=कमल। कोक=चकई चकवा। दीने=दुःखी हैं। हरि=सूर्य।

सूर्योदयके पहले भूत, दीया, जुगनू, उल्लू, निशाचर आदि अन्धकारमें सुखी रहनेवाले खुश रहते हैं। कमल, चक्रवाक आदि एवं समस्त लोक दुःखी रहते हैं। सूर्य देवता अप्रस्तुत हैं। सूर्यमें किसी प्रतापी पुरुष या राजाका सारूप्य है, जो प्रस्तुत और वास्तविक विषय है। सारूप्य निबन्धना है। अर्थ स्पष्ट है।

निसाकर

मैलो मृग धारे, जगत नाम कलङ्की जाग।
तऊ कियो न मयङ्क तुम सरनागतको त्याग॥

सरनागतको त्याग कियो नहिं ग्रसे राहुके।
लिये हियेमें रहो तजो नहिं कहे काहुके॥
बरनै दीनदयाल जोति मिस तो जस फैलो।
हो हरिको मन सही कहैं नर पामर मैलो॥२१॥

चन्द्रमा, लोगोंने लाख कलंक लगाया, पर तुमने अपनी शरणमें आये मैले मृगको न छोड़ा। राहुके ग्रसनेपर भी गोदमें लिये रहते हो। तभी तो चाँदनीके बहाने तुम्हारा यश फैला हुआ है। जो नीच तुमको मैला कहते हैं उनका मनही मलीन है। तुम तो निश्चय ही भगवान्के मन हो! तुम क्यों मैले होने लगे!

शरणागतकी रक्षा करनेमें स्वार्थत्याग करनेवाले मनुष्यकी व्याजस्तुति है। साथ ही विशेष निवन्धना भी है।

दानी अमरित के सदा देव करैं गुनगान।
सुनौ चंद बंदैं तुमैं मोद निधान जहान॥
मोद निधान जदान संभु सिर ऊपर धारैं।
देखि सिंधु हरखाय निकाय चकोर निहारैं॥
बरनै दीनदयाल सबै तुमको सुखखानी।
एक चोर बरजोर घोर निंदै दुखदानी॥२२॥

बरजोर=जबर्दस्त। चोरही तुम्हारी निन्दा करते हैं। व्याजस्तुति है। यहां ऐसे लोगोंकी अप्रस्तुत प्रशंसा है जो सबके साथ उत्तम बरताव करते हैं। तो भी खलोंसे गालियां सुनते हैं। अर्थ स्पष्ट है।

केतौ सोम कला करौ, करौ सुधा को दान।
नहीं चन्द्रमणि जो द्रवै यह तेलिया पखान॥

यह तेलिया पखान हठी कठिनाई जाकी।
टूटीं याके सीस बीस बहु बांकी टांकी॥
बरनै दीनदयाल चन्द तुमहीं चित चेतौ।
कूर न कोमल होत कला जौ कीजे केतौ॥२३॥

चन्द्रमणि=चन्द्रकान्तमणि जो चन्द्रमाकी किरणोंसे पिघल जाता है। तेलिया पखान=तेलिया पत्थर जो अत्यन्त कड़ा होता है।

कोई कलावान कितना ही रिझावे परन्तु रसहीन हृदय-वाला मनुष्य नहीं पिघलता। "चन्द्रमा! कितना ही अमृत बरसाओ। यह चन्द्रकान्त-मणि नहीं है। तुमने इसको पहचाना नहीं। अजी! यह तो तेलिया पत्थर है, न जाने कितनी टांकियां इसपर टूट चुकी हैं। यह कूरों का कूर है। महासूम है, तुम्हारे किये यह नहीं गलनेका।"

अरसिक सूमकी निन्दा ही प्रस्तुत विषय है। सोम और तेलिया पाषाणकी आड़में कलावान और अरसिक सूमकी चर्चा है। व्याजनिन्दा तथा विशेष निबन्धना है।

पूरे जदपि पियूख तें हरसेखर आसीन।
तदपि पराये बस परे रहौ सुधाकर छीन॥
रहौ सुधाकर छीन कहा है जौ जगबन्दत।
केवल जगत बखान पाय न सुजान अनन्दत॥
बरनै दीनदयाल चन्द हौ हीन अधूरे।
जौ लगि नहिं स्वाधीन कहा अमरित तें पूरे॥ २४॥

पियूख=पीयूष। हरसेखर=शंकरके भालपर। छीन=क्षीण। भगवान् शंकरके माथेपर द्वितीयाके क्षीणकला चन्द्रमा विराजते हैं। अमृतसे भरे होते हुए भी क्षीण हैं। जगतमें आदर है, तो भी क्या "पराधीन

सपनेहुँ सुख नाहीं।" पराधीनताकी तारीफ़ सुनकर भला किस समझ-दारको सुख हो सकता है? "सर्वं परवशं दुःखम्।" स्वाधीनताके एक सुखके सामने दुनियाके सारे ऐशो आराम हेच हैं। स्वाधीनताकी व्याजस्तुति और विशेष निबन्धना है।

दीपक

मित्रनाम को दीपलघु करै कहा रे नास।
वे वरु तो अभिधान को अधिकौ करत प्रकास॥
अधिकौ करत प्रकास भलाई उनकी छाई।
त्रिभुवन भवन मँझार पूजि सब करैं बड़ाई॥
बरनै दीनदयाल करै तू कौन काम को।
रही कारिखी छाय जराय न मित्र नाम को॥२५॥

मित्र=सूर्य्य=पतंग। पतंग=फतंगा। इस तरह फतंगेका और सूर्य्यका एक ही नाम पतंग है। दीपका अभिधान="दीप" का नाम, दीपका नाम रखनेवाला दूसरा कोई वाच्य, यहां "द्वीप" अर्थात् जम्बूआदि "द्वीप" से अभिप्राय है। तो=तव, तेरा।

हे दीपक! मित्र (सूर्य्य) के नामधारी फतंगेको तू क्यों नष्ट करता है। देख तो, वह मित्र, तेरे नामधारी द्वीपोंको बढ़ बढ़कर रोशनी पहुँचाता है। उसकी भलाईपर त्रिलोकमें बड़ाई होती है, पूजा होती है। तू किस कामका है? देख तो तेरी करनीका ही फल है कि तेरे सिरपर कालिख लगी हुई है। अबसे अपने मित्रके नामरासीको जलाना छोड़ दे।

किसी थोड़ी विभूतिवालेको उसके अत्याचारपर और बड़ी विभूति-वालेके साथ उसके ऊँचे व्यवहारके बदले नीच व्यवहारपर उपदेश देना ही प्रस्तुत है। व्याजस्तुति और विशेष निबन्धना है।

भाजन सहित सनेह की करत चाह तुम नाहिँ।
परहित देत प्रकाशवर रतनदीप जगमाहिँ॥
रतनदीप जगमाहिँ तुम्है चल वात न परसै।
अविचल विमल स्वभाव भाल कालिमा न दरसै॥
बरनै दीनदयाल लसौ तातेँ सिर राजन।
तूल कुवतियां त्यागि भये सत सोभा भाजन॥२६॥

भाजन=(१) पात्र (२) बरतन। सहित=(१) हितके साथ (२) समेत। सनेह=(१) प्रेम, (२) तेल। परहित=(१) परायेके भलेके लिये, (२) परन्तु हितकारी। रतनदीप=(१) रत्नोंके रत्न, (२) मणिका दीपक। चल वात=(१) चलती बातें या चवाव, (२) चंचल वायु। तूल कुवतियां=(१) बुरी बातोंका व्यर्थ विस्तार, (२) रूईकी निकम्मी बत्तियां।

श्लेषालंकारके साथ रत्नदीपककी आड़में ऐसे नररत्नकी स्तुति है जो परोपकारके लिये ज्ञान फैलाता है, हितयुक्त प्रेम और पात्रताको या चवावकी परवा नहीं करता, पवित्र स्वभाव है, चरित्र कालिमारहित है, राजाओंसे सम्मानित होता है, थोड़ा कहता है पर हित, मधुर और सत्य कहता है और भलोंमें शोभा पाता है। शब्दार्थमें पहले अर्थ इसी नररत्नके पक्षके हैं, दूसरे अर्थ रत्न दीपकके पक्षके हैं।

हे मणिके दीपक तुम तेल भरे बरतनके मुहताज नहीं हो, तो भी तापरहित प्रकाश देते हो, चंचल वायुसे बुझ नहीं सकते, (स्वभाव) अपनी प्रकृतिसे ही अचंचल और पवित्र हो। साधारण दीपककी शिखामें कज्जली ही रहती है, परन्तु तुम्हारे प्रकाशमें कालिमाका क्या काम है? इन्हीं सब गुणोंसे राजाओंके सिर चढ़े रहते हो। तुमको रूईकी निकम्मी बत्तियोंका कोई काम नहीं है। उत्तम लोग तुमसे शोभा पाते हैं। कुण्डलियामें नररत्न और रत्नदीपक दोनोंसे सम्बोधन है। सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा है।

नीरद

दीजै जीवन जलद जू दीन द्विजन को देखि।
इनको आसा रावरी लागी अहै बिसेखि॥
लागी अहै बिसेखि देहु कुल कीरति छैहै।
या चपला है चला लला धौं कितको जैहै॥
बरनै दीनदयाल आप जग में जस लीजै।
परमधरम उपकार द्विजन को जीवन दीजै॥ २७॥

ब्राह्मण्य लक्ष्मीवान् सज्जन और बादलका श्लेष।

जीवन=(१) जीविका (२) पानी। जलद=(१) जीविका देनेवाला, (२) बादल। द्विजन को=(१) ब्राह्मणों को (२) पक्षियों को। चपला=(१) चंचला लक्ष्मी (२) बिजली।

दोनों पक्षोंमें अर्थ स्पष्ट है। सारूप्य निबन्धना।

करिये सीतल हृदयबन सुमन गयो मुरझाय।
सुनो विनय घनस्याम हे सोभा सघन सुहाय॥
सोभा सघन सुहाय कृपा की धारा दीजै।
नीलकंठ प्रिय पालि सरस जगमें जस लीजै॥
बरनै दीनदयाल तृषा द्विजगन की हरिये।
चपला सहितलखाय मधुर सुरकानन करिये॥ २८॥

भगवान् कृष्ण और बादल का श्लेष।

सुमन=(१) अच्छा मन (२) फूल। घनश्याम=(१) भगवान कृष्ण जो घनेश्यामल हैं, (२) काला बादल। नीलकंठ=(१) शिव (२) नीलेकंठ वाला एक विशेष जातिका पक्षी। सरस=(१) रसयुक्त, (२)

जलाशय। द्विजगन=(१) ब्राह्मण भक्त, (२) पक्षीगण। चपला=(१) राधा, (२) बिजली। सुर=(१) बांसुरीका स्वर, (२) गरजनेकी आवाज। सारूप्य निबन्धना।

भीषन ग्रीषम ताप तें भयो झाँवरो छीन।
है यह चातक डावरो अनुग रावरो दीन॥
अनुग रावरो दीन लीन आधीन तिहारे।
कहै नाम बसु जाम रहै घनश्याम निहारे॥
बरनै दीनदयालु पालिये लखि तप तीखन।
सरी सरोवर सिंधु काहु इन मांगी भीखन॥ २९॥

भीषन=भयंकर, भीख नहीं। डावरा=बेटा। अनुग=सेवक। लीन=लय लगाये। बसुजाम=आठों पहर। तीखन=तीक्ष्ण, तेज। सरी=नदी। पपीहेकी ओरसे बादलसे कविकी सिफारिश अप्रस्तुत विषय है। बेचारा पपीहा आठों पहर आपका नाम रटा करता है, आपका अनन्य भक्त है। इसकी रक्षा कीजिये। भगवानसे किसी अनन्य भक्तके लिये बड़ी मजबूत सिफारिश प्रस्तुत विषय है। भक्तकी व्याजस्तुति भी है। सारूप्य निबन्धना।

जग को घन तुम देत हौ गज के जीवनदान।
चातक प्यासे रटि मरे तापर परे पखान॥
तापर परे पखान जानि यह कान तिहारी।
सरित सरोवर सिंधु तजे इन तुम्हैं निहारी॥
बरनै दीनदयालु धन्य कहिये यहि खग को।
रह्यो रावरो आस जन्म भरि तजि सब जग को॥ ३०॥

अर्थ सरल और स्पष्ट है। गजके जीवन दान,=इतना जल जितनेमें हाथी तृप्त हो जाय। पखान=पत्थर, ओला। उपालंभ है कि पपीहा धन्य

है, भारी अनन्य भक्त है, तो भी तुम अभक्तोंको तो भरपेट पानी देते हो और इस भक्तको बूँदभर भी नहीं देते, उलटे पत्थर मारते हो। भगवान्से उलाहना है कि आप औरोंको तो सुखी रखते हैं और अपने अनन्य भक्तोंको दुखी, यह आपकी कौन सी बान है? अनन्य भक्तकी व्याजस्तुति। सारूप्य निबन्धना। मिलान करो—

जलद जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जल पवि पाहन डारउ ॥
चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भांति भलाई ॥

—तुलसीदास।

आयो चातक बूँद लगि सब सर सरित बिसारि !
चहियत जीवनदान ! तिहि निरदै पाहन मारि ?
निरदै पाहन मारि पंख बिन ताहि न कीजै।
याहि रावरी आस प्यास हरि जग जस लीजै ॥
बरनै दीनदयाल दुसह दुख आतप तायो।
तृषावंत हित पूर दूर ते चातक आयो ॥ ३१ ॥

अर्थ सरल और स्पष्ट ही है। चातक और मेघ अप्रस्तुत विषय है। प्रस्तुत किसी धनीके दुर्व्यवहारपर उपालम्भ है कि कोई तुम्हारे पास अपनी अभीष्टसिद्धिके लिये दूरसे आया, बड़ी बड़ी उमीदें लेकर आया, पर तुम हो कि उसका निरादर करते हो, उलटे उसे अशक्त करते हो। उसकी उम्मीदें पूरी करके यश कमाओ। निर्दयता न करो। यह बड़ी ही मर्मस्पर्शी विनय है। इस उपालंभमें मृदुता है और ऋजुता भी है। कटुता नहीं है। विशेष निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा है।

जिन संसिन को सींच तुम करी सुहरी बहारि।
तिनको दई न चाहिये हे घन ! पाहन मारि ॥

हे घन पाहन मारि भली यह कही न वेदन ।
गरलहु को तरु लाय न चाहिय निज कर छेदन ॥
बरनै दीनदयाल जगत बसिबो द्वै दिन को ।
लेहु कलंक न कंद पालि दलि जिन संसिन को ॥३२॥

संसिन=शस्यन=अनाजके पौधोंको । दई=हे दैव । (दईकी जगह यहां "दाह" शब्दका होना भी संभव है और अधिक उपयुक्त भी है । "तिनको दाह न चाहिये हे घन, पाहन मारि"=हिमोपलकी मारसे उन्हें जलाना न चाहिये । "दई" शब्द दैवकी दुहाईके अर्थमें आया है जिसकी विशेष आवश्यकता नहीं है, इधर दाहन और पाहनका यमक भी हो जाता है ।) पाहन=पत्थर । कंद=मेघ । अन्तिम पदका अन्वय इस प्रकार है—"(हे) कंद (तुम) जिन संसिनको पालि (रहे हो तिनको ही) दलि कलंक न लेहु ।" अर्थ स्पष्ट है । जिनको पाला पोसा उन्हें ही नष्ट न करो, यही उपदेश उद्देश्य है । विशेष निबन्धना ।

भूले अब घन ! तुम कितै प्रथमै याको पालि ।
लखत रावरी राह को सूखि गयो यह सालि ॥
सूखि गयो यह सालि अहो अजहूँ नहिं आए ।
दै दै नाहक नीर सिंधु में सुदिन गवाँए ॥
बरनै दीनदयाल कहा गरजत हो फूले ।
समय न आये काम काम कौने भ्रमि भूले ॥ ३३ ॥

सालि=शालि=धान । अर्थ स्पष्ट है । मेघ ! तुम व्यर्थ समुद्रमें बरस बरसकर अच्छे दिन गँवाते हो । पहले जिन धानोंको तुमने पाला वह तो तुम्हारी बाट देखते देखते सूख गये, पर तुम नहीं ही आये । "दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरेधनम्" समुद्र में बरसने से क्या लाभ है ? विशेष निबन्धना ।

चपला संगति तें भयो घन तव चपल सुभाव।
ता छिन तें वरखन लगे अमरित को तजि ग्राव॥
अमरित को तजि ग्राव हनत को तुम्हें निवारै।
अहो कुसंग प्रचंड काहि जग में न बिगारै॥
वरनै दीनदयाल रहैगि न है यह सचला।
तावस अजस न लेहु, देहु चित, है चल चपला॥ ३४॥

ग्राव=हिमोपल, पत्थर। मेघ, बिजली की कुसंगति से तुम बिगड़ गये। अब भी चेतो, सुधरो। क्योंकि वह बड़ी चंचला है। यह किसी ऐसे सज्जन को सम्बोधन है जो धन पाकर बिगड़ गया है। अर्थ स्पष्ट है। विशेष निबन्धना है।

वरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माहिं।
यह तो ऊसर भूमि है अंकुर जमिहै नाहिं॥
अंकुर जमिहै नाहिं वरख सत जौ जल दैहै।
गरजै तरजै कहा वृथा तेरो श्रम जैहै॥
वरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक विना वलाहक ह्यां तू वरखै॥ ३५॥

पयोद=वलाहक=जलद=नीरद=बादल। अर्थ स्पष्ट है। "हे मेघ! तू व्यर्थ ऊसरपर क्यों बरसता है, सुपात्र और कुपात्रका विचार कर।" इस भावका उपदेश उस उपदेशकके लिये है जो योग्यता और श्रद्धा रहित श्रोताओंको उपदेश करता है, उस शिक्षकके लिये है जो कुपात्र शिष्योंको सिखाता है, उस दानीके लिये है जो अपात्रको देता है। ("ऊसर बरखै तृन नहिं जामा। सन्त हृदय जिमि उपज न कामा।" तुलसी।) विशेष निबन्धना।

समुद्र

रतनाकर महि माहँ तुम अति अथाह गंभीर।
हैं प्रवाह दुस्तर भरे ग्राह प्रबल तो नीर॥
ग्राह प्रबल तो नीर तीर पैठत बुध हारे।
धीर न रहै सरीर तरंग निहारि तिहारे॥
बरनै दीनदयाल जौन मरजीवा जाकर।
लै मुकुतन को कढ़ै सोइ धनि हे रतनाकर॥ ३६॥

रतनाकर=रत्नोंसे भरा, समुद्र। तो=तव, तुम्हारे। मरजीवा=गोता खोर जो समुद्रसे मोती निकालता है। मरजीवा इसलिये कहलाता है कि अपनी जानपर खेलकर गोते लगाता है, मर मर कर नया जन्म लेता है, अपनी जानको जोखोंमें डालनेवाली जीविका करता है। जाकर=जिसका हाथ। मुकुतनको=मोतियोंको।

अर्थ स्पष्ट है। अन्तकी दो पंक्तियोंका अन्वय करें तो यह रूप होता है—"जो मरजीवा है, जिसका हाथ मोतियोंको लेकर कढ़े। वही धन्य है।" अर्थात् जो जानपर खेलता है और जिसका हाथ मोतियोंसे भरा निकलता है, वही धन्य है। यहाँ "जाकर" खड़ी बोली नहीं है। अप्रस्तुत विषय समुद्र है। प्रस्तुत विषय भवसागर है। मरजीवा (मरने जीनेकी लीला करनेवाला, मरनेपर भी जीता रहनेवाला, अपनी प्रकृतिके समुद्रमें गोता लगानेवाला) सगुण ब्रह्मके वह हाथ धन्य है जो मुक्तपुरुषोंको लेकर भवसागरसे कढ़ते हैं। सारूप्य निबन्धना।

गरजै बातन तें कहा धिक नीरधि! गंभीर।
बिकल बिलोकैं कूप-पथ तृषावंत तो तीर॥

तृषावंत तो तीर फिरैं तोहि लाज न आवै।
भँवर लोल कल्लोल कोटि निज विभौ दिखावै॥
बरनै दीनदयाल सिंधु तोकों को बरजै।
तरल तरंगी ख्यात वृथा बातन तें गरजै॥ ३७॥

बातन=हवाके झकोड़ोंसे, बातोंसे। लोल=चंचल। कल्लोल=खेल। विभौ=विभव। तरल तरंगी=चंचल मौजी। ख्यात=मशहूर।

अर्थ स्पष्ट है। समुद्र तुझे धिक्कार है कि कोरे हवाके झकोरोंसे तू इतना गरजता है पर तुझे लाज नहीं आती कि चुल्लू भर पानीके लिये प्यासे तेरे किनारेसे कुएँकी खोजमें फिर जाते हैं ?

अप्रस्तुत विषय समुद्र है। प्रस्तुत विषय वह सूम है जो अपने धनपर गरजता बहुत है पर दीन दुखिया उससे रत्तीभर लाभ नहीं उठा सकते। सारूप्य निबन्धना।

नद

सिंधु बड़ाई भूलि जनि नद ? नमि के चलि चाल।
सहिबो परिहै खार ह्वै बड़वानल की ज्वाल॥
बड़वानल की ज्वाल नाम रुपहु मिटि जैहै।
ह्वै है अधिक अपीव जीव कोउ नीर न छ्वैहै॥
बरनै दीनदयाल ब्याज की कहा चलाई।
जैहै मूल नसाय पाय नद सिंधु बड़ाई॥ ३८॥

अपीव=अपेय। खार=खारी, खराब।

समुद्रमें मिलकर बड़े हो जानेपर न भूल। हे नद ! नम्र होकर चल। तेरा जल खारी हो जायगा, तू खराब हो जायगा, बड़वानलकी ज्वाला सहनी पड़ेगी, नाम रूप मिट जायगा, तेरा जल कोई न छुएगा,

पावेगा तो यह बड़ाई कि समुद्र हो गया, पर ब्याजकी कौन कहे मूल भी खो बैठेगा।

जो मनुष्य अत्यन्त बड़े हो जानेकी आशासे मदमत्त हो जाता है, उसे चेतावनी है। विशेष निबन्धना।

हे नद? ढाहै तरुन जनि पावस प्रभुता पाय।
ये तो तेरे तीर पै सोभा रहे बनाय॥
सोभा रहे बनाय छाय फल फूलन तें अति।
सीत सुगंध समीर धीर गति हरैं पथिक मति॥
बरनै दीनदयाल बिबिध खग रटैं भरे मद।
ये सुख रहिहैं नाहिं गये इन तरु के हे नद॥ ३९॥

पावस=प्रावृट्, बरसात। "हे नद, जो थोड़े दिनोंकी बरसातके मदसे उमड़कर पेड़ोंकी जड़ खोदकर बहाने लगा है, यह अच्छा नहीं करता। इन पेड़ोंसे तेरे किनारोंकी शोभा है। इनसे शीतल मन्द सुगन्ध हवा बहती है। भांति भांतिके पक्षी इनपर कलरव करते हैं। इन्हें मत उखाड़।" कोई बड़ा आदमी जब कुछ दिनोंके लिये बहुत भारी अधिकार पा जाता है, तो प्रभुताके मदमें भूलकर अकसर अपने पुराने आश्रितों और अड़ोसियों पड़ोसियोंकी जड़ उखाड़ने लगता है। ऐसे ही अधिकार मत्तको चेतावनी है। विशेष निबन्धना।

नदी

बहु गुन तो में है धुनी! अति पुनीत तो नीर।
राखति यह ऐगुन बड़ो बक मराल इक तीर॥
बक मराल इक तीर नीच ऊँचो न पिछानति।
सेत सेत सब एक नहीं ऐगुन गुन जानति॥

वरनै दीन दयाल चाल यह भली न है सुन।
जगमें प्रगट नसाहिं एक ऐगुन ते वहु गुन ॥ ४० ॥

धुनी=नदी। मराल=हंस। अर्थ स्पष्ट है। एक अवगुणसे बहुतसे गुण नष्ट हो जाते हैं, यह वात जगतमें प्रकट है। नदी! तुम विवेकी हंस और अविवेकी दंभी वगलेका समान आदर करती हो। वगलेकी वदौलत वदनाम हो जाओगी। यह किसी ऐसे ऐश्वर्यवान्को उपदेश है जो सज्जन असंज्जन दोनोंको आश्रय देता है और जिसके लिये दुर्जनके संसर्गसे वदनाम होनेकी संभावना है। विशेष निवन्धना।

कवियोंकी यह भी उक्ति है कि वहुतसे गुणोंके वीच एक अवगुण दव जाता है। "एकोहि दोषों गुण सन्निपाते निमज्जतींदोः किरणेष्विवांकः।" चन्द्रमाके गुण-किरणोंमें एक अंक-दोष डूव जाता है। परन्तु उस एक दोषसे चन्द्रमा वदनाम भी है। इस कुण्डलियामें "वहु गुन नसाहिं" अपयश फैलनेके ही अभिप्रायसे कहा गया है। एक मछली सारे तालावको गन्दा करती है।

कोलाहल सुनि खगन के सरवर जनि अनुरागि।
ये सव स्वारथ के सखा दुरदिन दैहैं त्यागि॥
दुरदिन दैहैं त्यागि तोय तेरो जव जैहैं।
दूरहिँ ते तजि आस पास कोऊ नहिं ऐहैं॥
वरनै दीनदयाल तोहि मथि करिहैं काहल।
ये चल छल के मूल भूल मति सुनि कोलाहल॥ ४१ ॥

कोलाहल= शोर गुल। तोय=जल। काहल=गदला, ढोल की तरह खाली। चल=चले जानेवाले। अर्थ स्पष्ट है।

ये पक्षी स्वार्थ साधकर जल्दी चले जायेंगे, हे सरोवर तू इनके कोला-

हलपर मुग्ध न हो। तेरे बुरे दिन आवेंगे तो ये तुझे त्याग देंगे।

लक्ष्मीवानोंके पास स्वार्थी खुशामदी घेरे रहते हैं। धन गया तो वह भी चलते हुए। यही सामान्य नीति सरोवरको विशेष उपदेशद्वारा समझायी गयी है। विशेष निबन्धना।

आए ग्रीषम देखिहौं लघुसर तेरी सान।
कहा करै एतो बड़ो पावस पाय गुमान॥
पावस पाय गुमान भरो अति भूल रह्यो है।
भेक बकन के संग उमंगिनि फूलि रह्यो है॥
बरनै दीनदयाल दिना दस के चलि जाये।
तब देखिहौं तरंग तोय वह ग्रीषम आये॥ ४२॥

भेक=मेंढक।

अर्थ स्पष्ट है। लघुसर! बरसातमें गरूरसे उमड़ा आता है। आने दे गरमी तो देखूँगा तेरी शान। (छुद्र नदी बहि चलि उतराई। जिमि थोरे धन खल बौराई। तुलसी।)

थोड़े धनपर उमड़ चलनेवाले छुद्र हृदयीके प्रति यह अन्योक्ति कही गयी है। विशेष निबन्धना।

सर तो मैं सरसे बसे भेकन हित बक बंस।
सारस हैं सारस नहैं ताते रसैं न हंस॥
तातें रसैं न हंस तोहि तजि दूरि गये हैं।
तोको मानि मलीन नहीं मन लीन भये हैं॥
बरनै दीनदयाल बकन हटि तू बरजो मैं।
सरस समुझि न हंस कुसंगति को सर तो मैं॥ ४३॥

सरसे=रस पाकर। भेक=मेंढक। सारस=कमल, सारस पक्षी। बकन हटि=बगलोंको मनाकर। तूवरजो मैं=मैंने तुझे मना किया था।

ये बगले मेंढकोंकी खातिर तुझमें डेरा डाले हुए हैं। इनकी संगतिसे तू मैला हो गया। यही समझकर हंस चले गये और अब तुझसे प्रेम नहीं रखते। मैंने तो तुझे चेतावनी दी ही थी। (एकतालीसवीं कुण्डलियामें ऐसी चेतावनी सी है भी।) अब तू बगलोंको अपनेसे दूर कर, इसीमें तेरी भलाई है। कुसंगतिसे बचनेके लिये बड़े आदमियोंको उपदेश। विशेष निबन्धना।

कवित्त

अमल अनूप जल मनिमै निसेनी जासु थल को बखान सुतो हुतो नरवर मैं। मीन के विलास लहरीन के प्रकास जामैं लसी दीनद्याल ऐसी प्रभा ना अपर मैं॥ चितै रह्यो चंचरीक चारु कंज कलिका को हंस सरदागम रमन गों अधर मैं॥ सरमें लगे हैं, अवसर मैं समुझि यह सूकर विहार करैं अहो तेहि सरमैं॥ ४४॥

मनिमैं=मणिमय। निसेनी=निःश्रेणी, सीढ़ियाँ। सुतो=सो तो। हुतो=था। रमन=रमण करनेके लिये। गो=गया। अधरमें= अन्तरिक्षमें, पर्वतसे नीचे, मैदानमें। सरमै=शरमाने। अवसर मैं=(१) बरसातमें, (२) मौकेपर।

कोई समय था कि इस सरोवरमें अमल अनुपम जल था, मणि जटित सीढ़ियां थीं, स्थलकी सुन्दरता और स्वच्छताकी जनतामें बड़ी बड़ाई थी। मछलियां खेलती थीं, छोटी छोटी लहरियोंसे सूर्य्यकी किरणें सुन्दर चमकती थीं। ऐसी चमक दमक कहीं और देखी नहीं

हलपर मुग्ध न हो। तेरे बुरे दिन आवेंगे तो ये तुझे त्याग देंगे।

लक्ष्मीवानोंके पास स्वार्थी खुशामदी घेरे रहते हैं। धन गया तो वह भी चलते हुए। यही सामान्य नीति सरोवरको विशेष उपदेशद्वारा समझायी गयी है। विशेष निबन्धना।

आए ग्रीषम देखिहौं लघुसर तेरी सान।
कहा करै एतो बड़ो पावस पाय गुमान॥
पावस पाय गुमान भरो अति भूल रह्यो है।
भेक बकन के संग उमंगिनि फूलि रह्यो है॥
बरनै दीनदयाल दिना दस के चलि जाये।
तब देखिहौं तरंग तोय वह ग्रीषम आये॥ ४२॥

भेक=मेंढक।

अर्थ स्पष्ट है। लघुसर! बरसातमें गरूरसे उमड़ा आता है। आने दे गरमी तो देखूँगा तेरी शान। (छुद्र नदी बहि चलि उतराई। जिमि थोरे धन खल बौराई। तुलसी।)

थोड़े धनपर उमड़ चलनेवाले छुद्र हृदयीके प्रति यह अन्योक्ति कही गयी है। विशेष निबन्धना।

सर तो मैं सरसे बसे भेकन हित बक वंस।
सारस हैं सारस नहैं ताते रसैं न हंस॥
तातें रसैं न हंस तोहि तजि दूरि गये हैं।
तोको मानि मलीन नहीं मन लीन भये हैं॥
बरनै दीनदयाल बकन हटि तू बरजो मैं।
सरस समुझि न हंस कुसंगति को सर तो मैं॥ ४३॥

सरसे=रस पाकर। भेक=मेंडक। सारस=कमल, सारस पत्ती। चकन हरि=बगलोंको मनाकर। तूबरजो मैं=मैंने तुझे मना किया था।

ये बगले मेंढकोंकी खातिर तुझमें डेरा डाले हुए हैं। इनकी संगतिसे तू मैला हो गया। यही समझकर हंस चले गये और अब तुझसे प्रेम नहीं रखते। मैंने तो तुझे चेतावनी दी ही थी। (एकतालीसवीं कुण्डलियामें ऐसी चेतावनी सी है भी।) अब तू बगलोंको अपनेसे दूर कर, इसीमें तेरी भलाई है। कुसंगतिसे बचनेके लिये बड़े आदमियोंको उपदेश। विशेष निबन्धना।

कवित्त

अमल अनूप जल मनिमै निसेनी जासु थल को बखान सुतो हुतो नरवर मैं। मीन के विलास लहरीन के प्रकास जामैं लसी दीनद्याल ऐसी प्रभा ना अपर मैं॥ चितै रह्यो चंचरीक चारु कंज कलिका को हंस सरदागम रमन गों अधर मैं॥ सरमें लगे हैं, अवसर मैं समुझि यह सूकर विहार करैं अहो तेहि सरमैं॥ ४४॥

मनिमैं=मणिमय। निसेनी=निःश्रेणी, सीढ़ियाँ। सुतो=सो तो। हुतो=था। रमन=रमण करनेके लिये। गो=गया। अधरमें= अन्तरित्तमें, पर्वतसे नीचे, मैदानमें। सरमैं=शरमाने। अवसर मैं=(१) बरसातमें, (२) मौकेपर।

कोई समय था कि इस सरोवरमें अमल अनुपम जल था, मणि जटिल सीढ़ियां थीं, स्थलकी सुन्दरता और स्वच्छताकी जनतामें बड़ी बड़ाई थी। मछलियां खेलती थीं, छोटी छोटी लहरियोंसे सूर्य्यकी किरणें सुन्दर चमकती थीं। ऐसी चमक दमक कहीं और देखी नहीं

गयी। आज उसी सरोवरमें भौंरे कमलकी कलियोंके भविष्यपर आसरा लगाये बैठे हैं।❀ हंसोंने समय टेढ़ा देखा, और यह समझ कर कि बरसातमें अब उसी सुन्दर सरमें सूअरें गँदले पानीमें विहार कर रही हैं, वहां आनेसे शरमाने लगे हैं। शरद ऋतुके आगमनतकके लिये तो हंस मैदानोंमें ही रमण कर रहे हैं।

किसी विवेकी विज्ञानीकी पहले तो बड़ी अच्छी दशा थी। अमल अनूप ज्ञानका अमृत हृदयके सरोवरमें भरा था। आत्मसंयम, मनोनिग्रह, वैराग्य आदिकी मणिमय सीढ़ियां बड़ी सुन्दर थीं। अच्छोंमें सुयश फैला था। उत्तम भाव और उज्ज्वल मनोवृत्तियां इस मानस सरमें विहार कर रही थीं। पर एकाएकी माया रूपी बरसातने सांसारिक वैभवकी रेलपेल कर दी। सरोवर गँदला हो गया। नीच विकार विहार करने लगे। विवेक शरमाकर हट गया। फिर कभी हृत्कमल खिलेगा इसी आशासे अनुराग भ्रमर दूरसे अवसर देख रहा है। सारूप्य निबन्धना।

कमल

सुनो अरविंद हे मलिंद बिन सजै नाहिं केलि मलकीटनकी रावरे वितान में। जानैं कहा मंद ये सुगंध मकरंद गुन, गावैं दीनद्याल तव माधुरी जहान मैं॥ तेऊ यह कला लखि भला नहिं कहैं अब मूंदि लेहु मुख गिने जाहुगे मलान मैं। हेरि हंस ओर फेरि खोलिहो भए तें भोर कीजिए सुजान बात भली जो जहान मैं॥ ४५॥

मलकीटन=मैलेके कीड़े। मलानमें=मैलोंमें। हंस=सूर्य्य।

❀"यही आस अटके रहे अलि गुलाब के मूल।
ऐहैं फेरि वसन्त ऋतु इन डारिन वे फूल"॥ विहारी।

मैलेके कीड़ोंसे क्रीड़ा तुम्हें नहीं सजती, हे कमल, यह सुगंध और मकरन्दके गुणोंको क्या जाने। दीनदयाल जो तुम्हारी माधुरीकी बड़ाई संसारमें किया करते हैं वह भी तुम्हारी इस कलाको देखकर भला न कहेंगे। अब तुम संपुटित होकर मुँह छिपा लो, क्योंकि मैलोंमें गिने जाओगे। आखिर जब सवेरे सूर्य्यकी ओर देखोगे तो फिर मुँह खोलोगे, इसलिये हे सुजान, जगत्में जो भली बात है सो ही करना चाहिये।

कमल निकलता है कीचड़ और जलमेंसे परन्तु दोनोंसे बिलकुल अलग रहता है। इसी तरह सच्चे ज्ञानी संसारमें रहते हुए भी और सब व्यवहार करते रहते भी संसारसे अलग रहते हैं। विदेह जनक इसके उदाहरण हैं। परन्तु संसारमें ऐसे भी अवसर आ जाते हैं जब परम विवेकी और निर्लिप्तपर भी मोहका आक्रमण होता है। मलिन वृत्तियोंके कीड़े आ जाते हैं। सद्वृत्तियोंके भौंरें मोह रात्रिके अंधकारको देखकर चले जाते हैं। ऐसी दशामें फँसा लाचार पूर्व्वावस्थाकी स्मृतिसे लज्जित होकर ज्ञानवान्‌को भी मुँह छिपाना पड़ता है। मोहरात्रिके बीतनेपर ज्ञानसूर्य्यके उदय होनेपर जैसे कमल फिर अपनी पूर्वावस्थाको पहुँचता है, वैसे ही ज्ञानी भी आत्मज्ञानके उदय होनेपर माया जालसे छूट जाता है। सारूप्य निबन्धना।

कुंडलिया

हारो है हे कंज! फँसि चंचरीक तुव माहिं।
याको नीके राखिये दुखित कीजिये नाहिं॥
दुखित कीजिये नाहिं दीजिये रस धरि आगे।
एक रावरे हेत सबै इन सौरभ त्यागे॥
बरनै दीनदयाल प्रेमको पैंड़ो न्यारो।
बारिज बँध्यो मिलिन्द दारुको छेदनिहारो॥ ४६॥

सौरभ=सुगंध । दारु=काठ । पैंड़ा=राह ।

अर्थ स्पष्ट है । कमल ! तुम्हारे लिये ही भौंरेने सब कुछ छोड़ दिया और तुममें फँस गया है, अनन्य भक्त है । इसे दुःखी न करो । इसका आतिथ्य करो । यह काठको छेद देता है, पर प्रेमी सच्चा है, कोमल कमलको नहीं छेदता, उसमें फँसकर प्राणतक खो बैठता है । सारूप्य निबन्धना ।

दीने ही चोरत अहौ इन सम चोर न और ।
इन समीरतें कंज तुम सजग रहो या ठौर ॥
सजग रहो या ठौर और रखिये रखवारे ।
ना तो परिमल लूटि लेहिंगे सबै तिहारे ॥
बरनै दीनदयाल रहो हो मित्र अधीने ।
भली करत हो रैन कपाट रहत हो दीने ॥ ४७ ॥

दीने ही=दिन दहाड़े । देने पर ही । दीन दुखियाको ही । सजग=होशियार । परिमल=सुगंध ।

यह हवा दिन दहाड़ेकी चोर और डाकू है । हे कमल ! तुम इससे होशियार रहो । भौरोंका पहरा रहे नहीं तो लुट जाओगे । रातको किवाड़ दिये सोते हो, यह खूब करते हो । अपने मित्रका (सूर्य्यका) भरोसा रखो ।

वायुकी व्याज स्तुति है । यश सौरभ यही तो फैलाता है । भौंरा तो अपने मतलबका साथी है । देखो, मतलबी यारोंके पहरेमें रहो, नहीं तो घर घर घूमनेवाली हवा तुम्हारा यश लूटकर सारे संसारमें फैला देगी । किवाड़ देके सोते हो यह खूब करते हो । यशकी दौलतकी खूब हिफाजत करो ।

सेवन करि अतिमुक्तको अलि ! पलास मति सेव ।
भ्रमत सदा तम रूप है गहन विकल या भेव ॥

गहन विकल या भेव देख वेलावर जाती।
गये न मिलिहै फेरि रहैगो पीटत छाती।
वरनै दीनदयाल सेइ कै सोभित देवन।
कोऊ बहुरि मलीन भूत को करै न सेवन ॥ ४८ ॥

अतिमुक्त (१) मोगरा, माधवी, मरुआ (२) जीवन्मुक्त वा वीतराग। अलि=(१) भौंरा (२) सखि। पलास (१) ढाक, (२) मांसाहारी। भ्रमत=(१) घूमता है, (२) भरमता है। तम=(१) काला (२) अज्ञानान्धकार। गहन=(१) वन (२) अत्यन्त। भेव=तरह, कारण, भेद, मर्म। विकल (१) विखरा (२) घवराया। वेलावर जाती=(१) सुन्दर वेला और चमेली, (२) अच्छी वेला को जाती हुई। देवन=(१) वगीचा, (२) देवताओंको। भूत=मरुपुष्प, लोध, श्योनाक, (२) पिशाच। इस अन्योक्तिमें भौंरेका और उपासकका श्लेप है।

भ्रमर पत्तमें—हे भौंरे! मोगरेका सेवन करके अव (ढाकके फूल) टेसूकी सेवा न कर। तू घोर काले रूप (अज्ञान) से इसी धोखेसे घवराकर भरम रहा है। देख, इस वनमें वेला चमेलीके पेड़ इस तरह फैले हुए हैं। ऋतु निकल जानेपर फिर यह न मिलेंगे, फिर तो छाती पीटता ही रह जायगा। दीनदयाल कहते हैं कि शोभित वागीचोंमें विहार करके फिर कोई भौंरा लोध श्योनाक आदि पर नहीं लुभाता।

उपासक पत्त में—हे सखि, (उपासककी मति!) तू एक वार वीतराग जीवन्मुक्तोंका सत्संग कर चुकी है। अव नीच मांसाहारियों, संसारमें प्रवृत्त लोगोंका संग न कर। यह संसारी लोग मोहमय होकर निरंतर भरमते रहते हैं, संसारके मर्मको न समझ अत्यन्त विकल हैं। तू भी इसके मर्मको न समझ नाहक व्याकुल हो रही है। देख सत्संग और सुकृतकी उत्तम वेला निकली जा रही है। जव यह वेला

निकल जायगी तब पछता पछताकर छातीका पीटना ही हाथ लगेगा। दीनदयाल कहते हैं कि शोभा सम्पन्न देवताओंकी सेवा करके फिर कोई मैले भयानक भूतोंकी उपासना नहीं करता।

होत उजागर बन बगर मधुप मलिन तव आस।
तजि माधवी सुप्रीति को बिहरत पास पलास॥
बिहरत पास पलास बास नहिं मोहत कामैं।
निरस कठोर छलीक छलन की लालो जामैं॥
बरनै दीनदयाल कहे कवि जे मतिसागर।
यथा नाम अरु रूप तथा गुन होत उजागर॥ ४९॥

उजागर=(उज्जाग्रत) प्रकाशित, फैला हुआ। बगर=घर।

हे भौंरे! तेरी मलिन आशाकी बदनामी सर्वत्र फैली हुई है। तू माधवी पुष्पोंको छोड़ अब टेसूपर लुभा रहा है। इसमें तो सुगंध नहीं है, फिर तू काहे पर भूला हुआ है! नीरस है, कठोर हृदय है, छली है, इसकी लालीमें ही ठगी है। मतिसागर कवि लोग ठीक ही कहते हैं, जैसा तेरा नाम है, वैसा ही रूप है, वैसे ही तेरे गुण फैल रहे हैं।

(नाम, मधुप=मधुपीनेवाला, शराबी। रूप, काला और गुण मलिन आशा=मैली या बुरी इच्छा।) मलिन प्रकृतिके मनुष्यकी दशाका भौरेके साथ सारूप्य है।

सेमर मैं भरमै कहा ह्याँ अलि! कछू न वास।
कमल मालती माधवी सेइ न पूरी आस॥
सेइ न पूरी आस वास वन हेरत हारो।
सुरसरि वारि विहाय स्वाद चाहै जल खारो॥

बरनै दीनदयाल कहा खटपद ये कर मैं।
हैं पग पसु तें ड्योढ़ रमे तातें सेमर मैं ॥५०॥

खटपद=छः पावों वाला (भौंरा)

अर्थ स्पष्ट है। अच्छे पुष्पों को छोड़ तू सेमर में क्या रम रहा है। यह मूर्खता तुझमें शायद इसी लिए है कि तू पशु के डेवढ़े पांव रखता है। ड्योढ़ा पशु है।

काव्यलिंग। अविवेकी मनुष्य से भ्रमर का सारूप्य।

एकै नाम न भूलि अलि इतो कथन मंदार ?।
वह औरै मंदार है करनी जासु उदार ॥
करनी जासु उदार देत अभिमत फल वे तो।
यातें ठगे सुकादि कला करि हारे केतो ॥
बरनै दीनदयाल सुखद गुन उन्हें अनेकै।
यामैं फोकट नाम अडंबर सुनियत एकै ॥५१॥

मंदार=मदार, आक, कल्पवृक्ष। गुन=गुण। रेशे। फोकट=सारहीन। हे भौंरे मंदार नाम पर मत भूल। यह है आक। इसने सबको ठगा है। कल्पवृक्ष में अनेक गुण है और इसके फलमें कोई सार नहीं है। गुण के बदले (गुण=रेशे) रेशे ही हैं, बल्कि धुआ है। इसके आडंबरके धोखे में न आ।

प्राय: बड़ों के नाम पर धोखा हो जाता है। नामके साथ ही साथ गुण का भी होना आवश्यक है। विशेष निबन्धना।

सोई विपिन विलोकिये हे मधुकर! इहि बेर।
हा ! छवि दही निदाघ अब रही राख की ढेर ॥

रही राख की ढेर जहाँ देखी वह सोभा।
लता सुमनमय देखि सुमन तेरो जहँ लोभा॥
बरनै दीनदयाल अहो दैवी गति जोई।
वहै भँवर तू भूलि भंवै न विपिन यह सोई॥५२॥

निदाघ=गरमी। अर्थ स्पष्ट है।

हे भौंरे ! तू भूलकर इधर उधर मत भरम। यह वही बाग है। इसका रंग रूप कालकी करालता से पलट गया है। गरमी ही ऐसी पड़ी है। फिर कभी इसके दिन फिरेंगे। किसी बड़े रईस पर विपत्ति आजाने पर उसके खोजी कलावान् को उपदेश। विशेष निबन्धना।

भौंरे भूल न वे भरम लखि इक सोभत भेस।
कढ़िगो सौरभ सुमन तें रही लालिमा सेस॥
रही लालिमा सेस कहूँ मकरंद न या मैं।
पौन पराग उड़ाय गयो कहुँ, मांहत का मैं॥
वरनै दीनदयाल साँझ ढिग आई बौरे।
चले बसेर विहंग कहां अब भूना भौंरे॥५३॥

अर्थ सरल है। भौंरे। रूपपर मत भूल अब न इस फूलमें सुगंध है न मकरन्द है न पराग है। वेला भी सांझ की आयी, अब इस पर गुञ्जार भरने को समय भी नहीं रहा।

"ऊपरी बनाव संवार से धोखा न खाओ। अब यह खोखले रहे। इनसे मिलने जुलने का कुछ नहीं। मौका भी अब वसूल करने का न रहा।" चंदा वसूल करनेवालों को मतलब का उपदेश है। विशेष निबन्धना।

आई निसि अलि ! कमल तें क्यों नहिं होत उदास ।
नहिं ह्वै है छन एक में सुखद अन्त को वास ॥
सुखद अन्त को वास नहीं बरु बन्धन पै है ।
ऐहै कुंजर जबै सखा जुत तोको खैहै ॥
बरनै दीनदयाल भलो बहु गोभ न भाई ।
तजिकै रस की आस चलो अब तो निसि आई ॥५४॥

ह्वै है छन एक में=एक क्षण में समाप्त हो जायगी । वास=निवास, गंध, । वास=(स्त्री) वासना, इच्छा ।

अर्थ सरल है । भौंरे ! रात आयी । अब कमल में न फँस नहीं तो हाथी आकर तेरे सहित कमलको खा जायगा । बहुत लोभ अच्छा नहीं होता ।" विषयोपभोग का फल अन्त में कडुवा होता है । उससे मनके जल्दी विरत हो जाने में ही कल्याण है । विशेष निबन्धना ।

छपी पोथियों में "अन्त की वास" पाठ है । परन्तु वास शब्द जब स्त्री लिंग होता है, तब उसका अर्थ है "वासना, इच्छा ।" जब पुल्लिंग होता है तब "निवास" और "गंध" दोनों अर्थ होता है जो इसप्रसंगमें अधिक अयुक्त है । दूसरी पंक्ति का अन्वय है "नहीं (तो) अन्त को सुखद वास (सुगंध) एक छन में ह्वै है (बीत जायगा) ।" तीसरी पंक्ति का अन्वय यों होगा "अन्त को वास (निवास) सुखद नहीं (है) बरु (तू) बन्धन पै है ।"

लै पल एक सुगंध अलि अपनो जानि न भूल ।
लै है साँझ सवेर मै वह माली यह फूल ॥
वह माली यह फूल कितै दिन लोढ़त आयो ।
फूले फूले लेत कली सब सोर मचायो ॥

बरनै दीनदयाल लाल लखि फंसै न है छल।
लगी बाग में आग, भाग रे गंधहिं लै पल ॥५५॥

पल=निमेष, घृणा, मूर्ख धोखेबाजी। गति।

अर्थ सरल है। "भौंरे! अपना समझकर धोखा मत खा। एकक्षणमें सुगंध लेकर भाग चल। सुबह शाम में माली इस फूल को भी चुन ले जायगा। सभी फूले फूले चुन लेता है। लाल रंग देखके मत भूल! इस भाग में तो आग लग रही है।

सांसारिक जीवन का उद्यान है। काल फूले हुओं को चुन लेता है। जिसे सुवास लेना हो थोड़ी देर लेकर यहाँ से अलग हो जाय। विशेष निबन्धना।

बौरे! लखि कै लालिमा हे भौंरे! मतिभूल।
हैं छलमय पल के असद ये कागद के फूल॥
ये कागद के फूल सुगंध मरंद न यामैं।
मृदु माधुरी पराग नहीं अनुरागत कामै॥
बरनै दीनदयाल चेत चित में इहि ठौरे।
लुटि जैहै यह बाग छटा छन की है बौरे॥५६॥

पल के=ठगीके। असद=झूठे।

अर्थ सरल है। यहां कागज के फूल और बागचे को जिसे व्याहोंमें लुटा देते हैं, दिखाकर भौंरेसे कवि कहता है कि इसकी लाली पर मत जा, यह धोखे की टट्टी हैं। यह तो दमके दममें लुट जायँगे।" नकली महत्ता देर तक नहीं ठहरती, उस पर लुभा जाना मूर्खता है। विशेष निबन्धना।

देखत ना ग्रीषम विषम यहि गुलाव की ओरि।
सुनो अली! यह नहिं भली, ह्वै हैं कली वहोरि॥
ह्वै हैं कली वहोरि तबै तुम पायन परिहो।
चायन कों करि काह वकायन मैं सिर मरिहो॥
बरनै दीनदयाल रहो हो पीतम पेखत।
यहै मीत की रीति एक से सुख दुख देखत॥५७॥

शब्दार्थ सरल है। "भौंरे! यह ठीक नहीं है कि इस कड़ी गरमी में तू गुलाव की ओर आंख उठा के भी नहीं देखता। किसी दिन फिर कलियां होंगी, तब तुम पावों पड़ोगे। आखिर अपनी प्रबल इच्छाओंको क्या कर दोगे जब गुलावको छोड़ वकायनमें सिर मारोगे? तुम गुलाव के प्यारे हो। घोर निदाध के कालमें भी सुख दुख एकसे झेलते मित्रता की रीति को निभाते रहो।" मित्रों को संकट काल में परित्याग नहीं करना चाहिये। विशेष निवन्धना।

भौंरा! अंत वसंत के है गुलाव इहि रागि।
फिरि मिलाप अति कठिन है या वन लगे दवागि॥
या वन लगे दवागि नहीं यह फूल लहैगो।
ठौरहि ठौर भ्रमात बड़ो दुख तात सहैगो॥
बरनै दीनदयाल किते दिन फिरिहै दौरा।
पछतैहै कर दए गए रितु पीछे भौंरा॥५८॥

सरल है। भौंरे! यह वसन्त के अन्त का गुलाव है। इससे प्रीति कर ले। गरमियों में यह नहीं मिलने का। फिर पछताना ही हाथ रहेगा।" समयपर लाभ उठा लो। "फिर पछितैहै अवसर बीते।" विशेष निवन्धना।

तौ लों अलि तू बिहरि लै जौ लों मित्र प्रकास।
पीछे बाँधो जायगो रजनी नीरज पास॥
रजनी नीरज पास बंधे फिरि स्वास न ऐहै।
यह तो बिधि को तात कला इत नाहि चलैहै॥
बरनै दीनदयाल सुमन सेयो कइ सौ लों।
बुड्यो कोकनद नहीं, रही चतुराई तौ लों॥५९॥

मित्र=सूर्य्य, दोस्त। विधि को तात=ब्रह्माका पिता, कमल। कोकनद=लाल कमल।

भौंरे! सूर्य्यके रहते मनमाना विहार करले। रातको तो कमल में वँधेगा ही। यह तो ब्रह्मा का भी बाप है इसकेआगे तेरी एक न चलेगी। यों तो कई सौ फूलोंके रस तूने लिये हैं, पर तेरी चतुराई तभी तक है जब तक कोकनदमें नहीं डूबा है, (लाल कमलके भीतर नहीं फँसा है)। "नद" शब्द के साथ "डूबना" कैसा अच्छा आया है!

श्रीहित स्याम बने छली भली पीत छबि गात।
अली कला निसि नहिं चली गह्यो बली बिधि तात॥
गह्यो बली बिधि तात बात वह जात रही है।
जो जन औरहि छलै निदान छलात वही है॥
बरनै दीनदयाल मित्र बिन जैहो अब कित।
तब तो रचे प्रपंच रूप करि कपटी श्रीहित॥६०॥

श्रीहित=राज्यलक्ष्मी वा मकरन्दके लिये। श्याम=काले विष्णु, भौंरा। विधितात=ब्रह्माके पिता कमल। मित्र=दोस्त, सूर्य्य। बली=राजाबलि, बलवान।

अर्थ सरल है। भौंरे! कमल के श्रीहरण के लिये भगवान् विष्णु

श्यामरूप पीताम्बर धारी वन कर कमल के पास गये। पर चालाकी न चल सकी। ब्रह्मा के बलवान् पिता ने पकड़ लिया। गये छलने परउलटे आप ही मुँह की खायी। मित्र के विना आये अब किधर जाओगे।" चौबे चले छब्बे बनने, दूबे बनके आये। छल पकड़ा गया, लेने के देने पड़े। वामन भगवान् के साथ भौंरे का श्लेष। विशेष निबन्धना।

हंस

कीजै गमन सुमानसर यह दुखदायक ताल।
हंस बंस अवतंस हो मौन गहो इहि काल॥
मौन गहो इहि काल काक बक खल या ठावैं।
अतिकठोर बरजोर सोर चहुँ ओर मचावैं॥
बरनै दीनदयाल इन्हैं तजि सुख सों जी जै।
सठ संगति अति भीति भूलि तहँ गमन न कीजै॥६१॥

वंस अवतंस=वंश के शिरोभूषण।

अर्थ सरल है। हे हंस! मानसरोवर जाओ। इस तालपर संगति अच्छी नहीं है। यहां तुम मौन ही रहो"। विवेकी सज्जनको उपदेश है कि यहां संगति अच्छी नहीं, बोलनेका मौका नहीं। वहां जाओ जहां सत्संग निश्चय हो। विशेष निबंधना।

मानस चारी हंस करि गंग तरंग विलास।
सूकर क्रीड़ा सर विषे अब अभाग्य बस वास॥
अब अभाग्य बस वास हास द्विज करैं चहूँ दिस।
हा किमि धारैं धीर वीर या पीर कहूँ किस॥
बरनै दीनदयाल अहो बिधि गति बलिहारी।
कीच बीच फंसि रह्यो हंस यह मानस चारी॥६२॥

द्विज=पत्ती, ब्राह्मण। कहूँ किस=कहां ? कैसे ? (यहां "कैसे" के अर्थमें "किस" का प्रयोग विचारणीय है।)

मानसरोवर का रहनेवाला यह हंस आज दुर्भाग्य से उस सर में आकर वसा है जहां सूअरें लोटती हैं। द्विज हँसी करते हैं। बड़ी मानसिक पीड़ा है। भाग्य की अजव गति है कि हंस कीचमें आ फँसा है। किसी सज्जन के कुसंगतिमें आ फँसनेके दुर्भाग्य का वर्णन है। सारूप्य निवन्धना।

नाहीं मानस हंस यह नहिं मुकुतन की रासि।
यह तो संवुक मलिनसर करटनकी मिरियासि॥
करटन की मिरियासि रहैं याको सठ घेरे।
तुम भूले मति धीर जाहु नहि याके नेरे॥
वरनै दीनदयाल चलौ निरजर सर पाहीं।
जहां जलज की खानि सदा सुख है दुख नाहीं॥६३॥

संवुक=शम्बुक, घोंघा, शम्बुक नामक दैत्य। करट=कौआ, क्रूर, नास्तिक।

मुकुतन=मुक्त प्राणी, मोती। मिरियासि=मीरास, वपौती।

निरजर=निर्जर, जिसे वुढ़ापा न आवे, देवता। निर्जर-सर=मानसरोवर।

अर्थ सरल है। "हे हंस! यह मानससर नहीं है जहां तुम मोती चुगते थे। यह तो गंदा है, घोंघों और कौओं की वपौती है। तुम तो मानसरोवर पर चलो जहां दुःख नहीं है, सुख ही है, जहां कमल की वहुतायत है, मोती हैं।"

यह भी विवेकी सज्जन को चेतावनी है। विशेष निवन्धना।

हितकारी मानस विना नहीं हंस चित चैन।
छिन छिन व्याकुल विरह वस सोचत है दिन रैन॥
सोचत है दिन रैन वैन नीके नहिं आवत।
काक बलाकन संग साक तजि समै वितावत॥
वरनै दीनदयाल मरालहिं संकट भारी।
मानस और न चहै विना मानस हितकारी॥६४॥

मानस=मानसरोवर, मनका, मनसे संबन्ध रखनेवाला, हृदय। वलाक=बगला। साक=स्वाभिमान, सामर्थ्य।

अर्थ सरल है। "हंस मानससरके विरहमें बेचैन है। दिन रात सोचमें रहता है, कम बोलता है, कौओं, बगलोंके संग समय काट रहा है। उसे भारी संकट है। उसका मन हितकारी मानसके सिवा और कुछ नहीं चाहता।" विवेकी पुरुष समय के फेर से अपने आचार्य्य वा सद्गुरुसे बिछुड़कर कुसंग में कष्ट से समय काटता है। उसे फिर उसी मानसहितकारी का साथ चाहिये। सारूप्य निबंधना।

चक्रवाकी

चल चकई तिहि सर विषै जहँ नहिं रैनि बिछोह।
रहत एकरस दिवस ही सुहृद हंस-संदोह॥
सुहृद हंस संदोह कोह अरु द्रोह न जाके।
भोगत सुख अम्बोह मोह दुख होय न ताके॥
वरनै दीनदयाल भाग्य विन जाय न सकई।
पिय मिलाप नित रहै ताहि सर तू चल चकई॥६५॥

सरविषै=सरमें। हंस-संदोह=हंसोंका झुंड। अम्बोह(फा०)=समूह। "चकई तू उस सर में चल जहां वियोग की रात्रि ही नहीं है, एक

रस दिन बना रहता है। हंस-मित्रोंका झुंड वहां मौजूद है, क्रोध द्रोह की वहां गुजर नहीं, सब सुख ही सुख है, दुख है ही नहीं। वहां बड़े भाग्य से जाना होता है वहां अपने प्यारे से सदा मिलाप रहता है। तू वहीं चल।"

हे मति, तू भगवान् की शरण में जा, जहां सदा ज्ञान का दिन बना रहता है, मोह की रात नहीं है, विवेकी ज्ञानी ऋषि मुनि की तो वहां भीड़ है। क्रोध, द्रोहतो फटकने नहीं पाते। सुखही सुख है। भगवान् के चरणों का वियोग कभी होने का ही नहीं। सारूप्य निवन्धना।

बक

चाली हंसन की चलै चरन चोंच करि लाल।
लखि परिहै बक! तव कला झख मारत ततकाल॥
झख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सो धारत।
विहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज विचारत॥
बरनै दीनदयाल वैठि हंसन की आली।
मंद मंद पग देत अहो यह छल की चाली॥६६॥

झख=मछली। खज अखज=खाने के योग्य या अयोग्य, खाद्य या अखाद्य। आली=पांती।

"हे बगले! चरण चोंच लाल करके तू कितनी ही हंस की नकल करे, तू हंसोंकी पांतमें मिलकर कितना ही मंद मन्द कदम रखे। मछली मारती बेर तो तेरा भेद खुल ही जायगा।"

दंभी कितना ही साधु-संगति में अपनी असलियत छिपावे उसके बुरे आचरण उसकी कलई खोल ही देते हैं।

मंडूक

दादुर काकोदर दसन परे मसन मति ध्याउ।
कहा लहैगो स्वाद को एक स्वास की आउ॥
एक स्वास की आउ ग्रास यह तोहि करैहै।
तोको नहिं विश्वास न मन कछु त्रास धरैहै॥
बरनै दीनदयाल तोहि लखि बड़ो बहादुर।
अरिमुख रह्यो समाय अजौं नहिं संकित दादुर॥६७॥

दादुर=मेंढक, मन्डूक। काकोदर=सांप। दसन=दांतों के बीच। परे=पड़कर। मस न मति ध्याउ=मच्छरों का ध्यान न कर। आउ=आयु, उम्र।

हे मेंढक! तू सांप के मुँह में पड़ा हुआ है। मच्छरों का स्वाद लेने की चिन्ता छोड़। अब एक दम की तो तेरी आयु रह गयी, तुझे यह अभी चट कर जायगा। फिर भी तू बड़ा बहादुर है कि वैरी के मुँहमें समा रहा है तब भी तुझे शंका नहीं है।"

काल के मुँहमें पड़ा हुआ प्राणी भी पापों से और विषयोपभोग से विरत नहीं होता और मौत का डर भी नहीं करता। विशेष निबन्धना।

मरुकूप

पथिकनके अँसुवानको जल दरसाय अलीक।
किनकिन की मति नहिँ छली तू मरुकूप छलीक!॥
तू मरुकूप छलीक, सून हिय, तामस वासा।
खाली धुनि सुनि परै नहीं जीवन की आसा॥
बरनै दीनदयाल कला न चलै गुनि जन की।
गुन भो वृथा विसाल सुमति हारी पथिकन की॥६८॥

चिन्तामनि=चिन्तामणि, अभिलाषा पूर्ण करने वाला एक रत्न। नीलमणि=नीलम, मरकत। पद्मराग=लाल, माणिक्य।

सरल है।

नीलमणि

मरकत पामर कर परी तजि निज गुन अभिमान।
इतै न कोऊ जौहरी ह्याँ सब बसैं अजान॥
ह्याँ सब बसैं अजान काँच तोको ठहरावैं।
तदपि कुसल तू मान जदपि यहि मोल बिकावैं॥
बरनै दीनदयाल प्रवीन हृदै लखि दरकत।
अहो करम गति गूढ़ परी कर पामर मतकत॥७२॥

मरकत=नीलमणि। दरकत=फटता है। पामर=नीच। अर्थ सरल है।

मुक्त

मेल्यो मुख घंसि सूंघ फिरि फेक्यो कीस अजान।
मुक्ता! वात कुशल भई जौ नहिं हन्यो पखान॥
जौ नहिं हन्यो पखान वन्यो तौ रूप अजौ लों।
मिले जौहरी तोल मोल विकिहै कइ सो लों॥
वरनै दीनदयाल खेल कपि कैसो खेल्यो।
वच्यो आपने भाग्य अहो मुक्ता मुख मेल्यो॥७३॥

घँसि=घिसकर। हन्यो पखान=पत्थर से मारा। तौ=नव। मुख मेल्यो=मुँहमें डाला हुआ।

अर्थ स्पष्ट है।

रंग

लीने गुरुता गरब को अरे रंग! मति भूलि।
रंग न तेरो है कछू सुवरन संग न तूलि॥
सुवरन संग न तूलि तासु गुन को नहिं जाने।
धिग तव तौल प्रताप आप गुन आप बखाने॥
बरनै दीनदयाल तिन्है नृप कीटन कीने।
तू पामर तिय पाय रहै लपटाय मलीने॥७४॥

तूलि=बराबरी कर। पामर तिय पाय=नीच स्त्रियोंके पावों में। अर्थ सरल है।

लोहा

लोहा! द्रोह न कीजिये पारसमनि के साथ।
ताहि परसि पैहै प्रभा भूपमनिन के माथ॥
भूपमनिन के माथ तोहि लखि जग हरखैगो।
करि करि कोटि प्रनाम सुमन तो पै बरखैगो॥
बरनै दीनदयाल कौन सतसंग न सोहा।
पैहै रूप अनूप बढ़ैगी कीमति लोहा॥७५॥

अर्थ स्पष्ट है।

कानन

राखे जरत दवागि तें दै दै धार उदार।
मान गहन घनस्याम को वा दिन को उपकार॥
वा दिन को उपकार साखि ये कोकिल कूजैं।
फूलो लता अपार सुभृंगन के गन गूंजैं॥

बरनै दीनदयाल धन्य तिनको जग भाखै।
जे मानैं उपकार तिन्हैं बुध में गनि राखै ॥७६॥

गहन=वन। अर्थ सरल है।

सामान्य वृत्त

पाई तुम प्रभुता भली चहुँ दिसि अलि गुंजार।
हे तरु तटिनीतीर के करि लै कछु उपकार॥
करि लै कछु उपकार आज ऋतुराज बिराजै।
डार सुमनके भार रहो झुकि के छवि छाजै॥
बरनै दीनदयाल पथिन दै छाँह सोहाई।
पच्छिन को प्रतिपाल करै किन प्रभुता पाई ॥७७॥

एहो द्रुम या सिसिर को दीजै दान तुरंत।
दीने सूखे पात के दैहै हरो वसंत॥
दैहै हरो वसंत फूल फल दलन समेते।
पैहो पुंज सुगंध भृंग गूँजेंगे केते॥
बरनै दीनदयाल लसोगे सोभा से हो।
भाखत वेद पुरान दिये विन मिलै न एहो ॥७८॥

उपकारी हो द्रुम महा हम भाखत तुव पाहिं।
राखहु नाहिं दुजिह्वको हिय कोटरके माहिं॥
हिय कोटरके माहिं देख दुख लो पच्छिन को।
पथी न आवैं पास त्रास उपजै लखि तिन को॥
बरनै दीनदयाल सकल गुन है तुव भारी।
यह कुसंग ततकाल त्यागिये जग-उपकारी ॥७९॥

दुजिह्व=सांप । द्रुम= पेड़ । पच्छिन= पच्चवाले । पच्ची गण ।

७७-७६, अर्थ सरल है । कहीं कहीं श्लेषके छींटे हैं । अगली कुंडलिया में वह स्पष्ट हो जायँगे ।

मन को खेद न करिय तरु ! पच्छिन को भरु पाय ।
भाखत साखा रावरी सोभा रहे वनाय ॥
सोभा रहे वनाय सुफल में तुम को चाहैं ।
सेवत प्रेम लगाय कहैं जस दिसि के माहैं ॥
वरनै दीनदयाल धीर रखिये निज तन को ।
मंद बात को पाय कँपाइय नाहिं सुमनको ॥ ८० ॥

भरु=भार । पच्छिन=(१) अपने पच्च वाले (२) पच्ची गण । भाखत साखा रावरी=(१) तुम्हारा शाखोच्चार करते वंश का वखान करते हैं, (२) तुम्हारी शाखा पर बैठे चहकते हैं । जस=यश । दिसिके माहैं=सब दिशाओं के बीच । मन्द बात=(१) ओछी और खोटी बातें (२) धीमी हवा । सुमन को=(१) अपने मन को (२) फूल को ।

हे वृच्च ! तुम्हारे पच्च वाले तुम्हारे सहारे जीते हैं । तुम्हारा यश गाते और दिक् दिगन्तमें फैलाते हैं, तुम्हारी शोभा बढ़ाते हैं, तुम्हारे सुभीतेके दिनों में तुम्हें चाहते हैं, प्रेम से तुम्हारी सेवा करते हैं । धैर्य्य रखो । ओछी बातों में आकर अपने मन को विचलित न करो और तुम्हारे सिर पर जो इनका बोझ है, इस पर खेद न करो ।

दूसरा अर्थ सरल है ।

वा दिनकी सुधि तोहिको भूलि गई कित साखि ।
वागवान गहि घूर ते ल्यायो गोदी राखि ॥

ल्यायो गोदी राखि सींचि पाल्यो निज कर तें।
भूलि रह्यो अब फूलि पाय आदर मधुकर ते ॥
बरनै दीनदयाल बड़ाई है सब तिन की।
तू भूमै फल भार भूलि सुधि को वा दिन की ॥ ८१ ॥

साखि=सखी। शाखा वाले अर्थात् वृक्ष।
अर्थ सरल है।

विशेष वृक्ष। तत्र चन्दन।

चंदन ! वंदन जोग तुम धन्य द्रुमन में राय।
देत कुकुज कंकोल लों देवन सीस चढ़ाय ॥
देवन सीस चढ़ाय कौन तुव रीस करैगो।
बड़े बड़े तरु ईस सुगंध न पीस मरैगो ॥
बरनै दीनदयाल पाय संताप निकंदन।
नंदन वन तें आदि करैं तव वंदन चंदन ॥ ८२ ॥

कुकुज=(कु=कुत्सित + कु=पृथ्वी + ज=जनित,) निकम्मे वृक्ष। कंकोल=शीतल चीनी की जाति का एक पेड़। रीस=ईर्षा। नन्दन वनते आदि=स्वर्ग के नन्दन वन से आरंभ करके जितने बाग हैं सभी। (चन्दन के सान्निध्य से मलयाचल पर और सभी वृक्ष सुगंधमय हो जाते हैं और चन्दन के ही नाम से बिकते और देवताओं के शीश पर चढ़ते हैं।)

तुलसी

सब तरु धरा धरे रहे बेस बड़े प्रिय कीस।
एकै ही तुलसी लसी लघु सरूप हरि सीस ॥

लघु सरूप हरिसीस रीस को तासु करैंगे।
बीस विसे तरु ईस खीस ह्व भार जरैंगे॥
बरनै दीनदयाल बड़ो छोटो जनि चित धरु।
भाग्यवंत है बड़ो बड़ो नहिं कहिये सब तरु॥ ८३॥

हरि=भगवान् विष्णु, वानर। रीस=बराबरी, ईर्षा। तरु ईस=बड़ और पीपल सरीखे बड़े पेड़। खीस=खराब, लज्जित। भार जरैंगे= अपने (डाह के) भार से जलेंगे।

अर्थ सरल है।

रसाल

एहो धीर रसाल! अति सोहत हौ सिरमौर।
साखा बरनैं रावरी द्विजवर ठौरै ठौर॥
द्विजवर ठौरे ठौर सुफल रावर ही चाहैं।
निकसै जो तव बात सुमन सो सुधी सराहैं॥
बरनै दीनदयाल धन्य वा धात्रीके हो।
जाते प्रगटे आय आप उपकारी एहो॥ ८४॥

धीर रसाल=(१) बुद्धिमान रसिक (२) भारी आम के पेड़। सिर-मौर=(१) सरदार (२) सिर पर बौर वा मंजरी। साखा बरनैं=(१) शाखोच्चार करें, (२) डाल चुन लें। द्विजवर=(१) ब्राह्मण (२) पक्षी। सुफल=(१) मनोरथ की पूर्त्ति, (२) उत्तम फल, आम। बात=(१) वार्त्ता, (२) हवा। सुमन=(१) पवित्र मन, (२) फूल, मंजरी सुधी= अच्छे बुद्धिमान।
धात्री=(१)धाय, दाई, (२) पृथ्वी, धरित्री।

श्लेषालंकार। दोनों पक्षों के अर्थ सरल हैं।

जेतो फल तैं नमत हो एहो धीर रसाल ! ।
तेतो ऊँचे होत हो सोभा होति बिसाल ॥
सोभा होति बिसाल बात तव है सुखदायक ।
रस तें करो निहाल तुम्हें सेवैं द्विजनायक ॥
बरनै दीनदयाल हिए हरि सों हित केतो ।
धरे रहैं छवि स्याम नमित रस देखैं जेतो ॥ ८५ ॥

हरि=हरारंग और भगवान कृष्ण । रस=कविता के नव रस और आम का मधुर रस । इस कुंडलिया में भी पहले की तरह श्लेष है ।

अर्थ सरल है ।

पाई तुम मृदुता नई भई कठिनई दूरि ।
गई स्यामता संग तजि छई लालिमा भूरि ॥
छई लालिमा भूरि पूरि आई मधुराई ।
सोभा बसी बिसाल नसी वह खोटि खटाई ॥
बरनै दीनदयाल सुगंध कला छिति छाई ।
जीवनमुक्त रसाल भये सुच संगति पाई ॥ ८६ ॥

जीवन मुक्त=कच्चे फलकी अवस्था के जल (जीवन) से मुक्त, आमके पकनेका वर्णन है और रसिकके जीवन्मुक्त होनेकी भी कथा है । शब्दावली और अर्थ दोनों सरल हैं ।

एहो सुमन समै सखे रखे रहो पिक डाल ।
आप विसाल रसाल हो एऊ बैन रसाल ॥
एऊ बैनरसाल मधुर सुरसाज सजेंगे ।
जाको देखि समाज सबै द्विजराज लजेंगे ॥

बरनै दीनदयाल महा महिमा महि लेहो।
पै यह काग अभाग दाग गुनि तजिये एहो॥ ८७॥

अर्थ सरल है। बौर लगती बेर कोयल को रखो, कौए का त्याग करो।

ऐसी संगति रावरे संग सबै न रसाल ?।
कागनके गन ये तुमैं घेरि रहे इहि काल॥
घेरि रहे इहि काल कहा कुसुमाकर पाए।
रसहु सुगंध समेत वृथा तुम देत बहाए॥
बरनै दीनदयाल दई गति भई अनैसी।
कोकिल कीर मलिंद तीर नहिं संगति ऐसी॥ ८८॥

कुसुमाकर=वसन्त। अनैसी=अनिष्ट, बुरी। मलिन्द=भौंरा। तीर=पास। सबैन, का गनके गन, रसाल आदि से श्लेपार्थ भी स्पष्ट हैं।

अर्थ सरल है।

जानैं नहिं तव माधुरी मंद मरंद सुगंध।
हे रसाल अज कूट कपि कोल क्रमेलक अंध॥
कोल क्रमेलक अंध फूल फल मूलबिनासक।
साख बिदारनिहार दुखद दुतिग्रासक त्रासक॥
एकै दीनदयाल रसज्ञ सिलीमुख मानैं।
महामीत महि मांह प्रीति महिमा तव जानैं॥ ८९॥

मरन्द=मकरन्द, मधु। अज=बकरा। कूट=बैल जिसके सींग टूटे हों। कोल=सूअर। क्रमेलक=ऊंट। अंध=उल्लू। चमगीदड़। दुतिग्रासक=द्युति, सौन्दर्य्य हर लेने वाले। त्रासक=कष्ट पहुँचाने वाले। सिलीमुख=भौंरा। अर्थ सरल है।

सुनिये कल कोमल कलित हे सद सुखद रसाल।
ये सुक पिक सारंग हैं सोभा करन बिसाल॥
सोभाकरन बिसाल डाल सेवैं तव हित सों।
चोंच चरन के घाय पाय नहिं दुखिये चित सों॥
बरनै दीनदयाल चूक मन मैं जनि गुनिये।
जानि मधुर सुखदानि बानिबर इनकी सुनिये॥ ९० ॥

सरल है।

कदली

रंभा! झूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते ह्वै गए अरु ह्वैहैं इहि खेत॥
अरु ह्वैहैं इहि खेत मूल लघु साखाहीने।
ताहूपे गज गहै, दीठि तुम पै प्रति दीने॥
बरनै दीनदयाल हमैं लखि होत अचंभा।
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रंभा॥ ९१ ॥

दीठि तुमपै प्रतिदीने=तुमपर नित्य निगाह (रहतीहै)। यहां "दिन" के लिये "दीन" का प्रयोग विचारणीय है। "दिया" के अर्थ में "दीन्ह" या "दीन" न लिखकर पूर्व कवियों ने कहीं कहीं "दिन" का प्रयोग इस लिये किया है कि पुराने प्राकृत में "दीन्ह" का रूप "दिन्न" वा "दिएण" है। परन्तु ह्रस्व दिन को गानेवाले और उच्चारण में बंगाली ही "दीन" बोलते सुने गये हैं।

रंभाबन! तुम निज बिखे राखि गजनके ग्राम।
चहत कुसल फलफूलको तिन खलतें बसु जाम॥

तिन खल तें वसु जाम गुनत रखिबो दल अपनो ।
साखा राखै कौन मूल हू ह्वैहैं सपनो ॥
बरनै दीनदयाल बात यह बड़ी अचंभा ।
बैरिन कोसहवास राखि सुख चाहत रंभा ॥ ९२ ॥

गजन के ग्राम=हाथी के झुंड । वसुजाम=आठों पहर । दल=पत्ता, पक्ष । बात यह बड़ी अचंभा=यह बड़ी अचंभा बात (है); अर्थात् आश्चर्य्य की बात है । (असंभव=अचंभव=अचंभो=अचंभा, पुल्लिंग है, परन्तु यहाँ बात शब्द का विशेषण है) ।

अर्थ सरल है ।

पलास

दिन द्वै पाय बसंत-मद फूल्यो कहा पलास ।
ग्रीखम भीखम सीस पै नहिं लाली की आस ॥
नहिं लाली की आस फूल सब तेरे झरिहैं ।
पीछे तोहि न दली अली कोउ आदर करिहैं ॥
बरनै दीनदयाल रहो नय कोमल किन ह्वै ।
ये नख नाहर रूप रहैंगे तेरे दिन द्वै ॥ ९३ ॥

लाली=सुर्खी, यश । नखनाहर रूप=टेसू का फूल सिंह के नख के अनुरूप । दली=हेदलवाले हेपत्तेवाले ।

अर्थ सरल है ।

लीने कंटक बन करै बिरही मन झख त्रास ।
याही तें तेरो कविन राख्यो नाम पलास ॥
राख्यो नाम पलास लाल मुख कोपित धारो ।
लह्यो न एक कलंक बिना कछु ताते कारो ॥

बरनै दीनदयाल संग सुकहू को कीने।
माधव सों मिलि मूढ़ तऊ छल कंटक लीने ॥ ९४ ॥

कंटक=मछली फँसाने वाली कटिया। टेसू का आकार थोड़ा बहुत कटियेके अनुरूप होता है। झख=मछली। पलास=मांसाहारी, निर्दय लह्यो न......कारो=कलंक बिना (=सिवा) एक (झक) न लह्यो, ताते कछुकारो (भयो)। सुर्खीमें जो गहराई है वह कुछकालापन इसलिये रखती है कि कलंकके सिवा पलाशके हाथ कुछ न लगा। टेसूरूपी बनसी का जंगल लिये हुए विरहीके मनरूपी मत्स्य को डराता रहता है, इसीसे कवियोंने तुझे "पलाश" (निर्दय) कहा है। परन्तु इतनेपर भी कलंकके सिवा कुछ हाथ न आया। गुस्सेसे तुम लाल हो गये। तुमने भगवान शुकदेवकी (अथवा वे मुरौअत सुग्गोंकी) संगत की और भगवान माधव (या वशाग्व वा वसन्त) भी मिले, तब भी धिक् मूर्ख तू छलकी कँटिया विरहियों को सतानेको लिये हुए है।

पलासके पत्ते वसन्तागमपर झड़ जाते हैं और टेसू लग जाते हैं। यह फूल अंगारे की तरह दीप्ति और गहरे लाल रंगके होते हैं।

सालमली

किन किन की मति नहिं छली सालमली करि अंध।
गीधे गीध अमिय इली जानत अली सुगंध॥
जानत अली सुगंध भली लाली सुक भूले।
जानि अँगार चकोर और चहैं अनुकूले॥
बरनै दीनदयाल लखै गति को छिन छिन की।
यह छलरूप लखाय छली नहिं मति किन किन की ॥ ९५ ॥

शाल्मली=सेमल। गीधे=ललगये, मिलगये, गीजे। अर्थ सरल है।

सेमल ! बिना सुगंध तू करत मालती रीस।
छलि रे भ्रम दे सुकन को नहिं जैहै हरि सीस ॥
नहि जैहे हरिसीस भूलि जिन लखि निज लाली।
जैहै वेगि बिलाय ल्याय मति मद को खाली ॥
बरनै दीनदयाल जगत में बिन गुन जे खल।
करैं वृथा अभिमान जथा तरु मैं तू सेमल ॥ ९६ ॥

सरल है।

आक

तोमैं बहु ऐगुन भरे अरे आक मतिहीन।
कहा जान केहि हेत नै हर तोसों हित कीन ॥
हर तोसों हित कीन तऊ उन केरि बड़ाई।
तू मति मौहै मूढ़ मानि अपनो प्रभुताई ॥
बरनै दीनदयाल बात सुनि भाखत जो मैं।
सिवकी दाया एक, आक बहु ऐगुन तो मैं ॥ ९७ ॥

आक=मदार।
अर्थ स्पष्ट है।

नाहीं कछु फल फूल तो वञ्यो नाम मंदार।
ताप गयो किन पथिनको सेवत तुमरी डार ॥
सेवत तुमरी डार कौन विश्राम लह्यो है।
नहिं पराग मकरंद मलिंदन भूलि रह्यो है ॥
बरनै दीनदयाल खगौहु न आवत पाहीं।
केवल छल मैं नाम वञ्यो कहुँ वासहु नाहीं ॥ ९७ ॥

करि बहुगुन पहिचान प्रथम सब रोग बिनासै।
जो कोउ सेवै याहि ताहि पीछे सुख भासै॥
बरनै दीनदयाल छांह मुद देति अनेकै।
यह सीतलता खानि तजो कटु देखि न एकै॥ १०६॥

अर्थ सरल है।

कपास

जग में गुनमय करि तुमैं बरनैं सकल महान।
कहा भयो जो नहिं कियो चपल एक अलि मान॥
चपल एक अलि मान कियो नहिं कछू नसायो।
हे कपास सहि खेद धन्य परछेद दुरायो॥
बरनै दीनदयाल स्याम याको गनि ठग मैं।
मधुप मंद किमि जान तुमैं, बुध जानैं जग मैं॥१०७॥

मान=आदर, गरूर या नाराजगी। सहिखेद=कष्ट सहकर, फटके ओटे, धुनके, काते, बुने जानेका कष्ट सहकर। गुनमय=सिरसे पैर तक गुणोंसे ही बना, एड़ीसे चोटीतक रेशा ही रेशा।

मिलान करो—

साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा। बन्दनीय जेहि जग जसु पावा॥

—तुलसी

तुम्बिका

एरी चूरी तूमरी अहो धन्य तव भाग।
मज्जति सुरसरि नीर में साधुप्रसाद प्रयाग॥

साधुप्रसाद प्रयाग टूटि जब तें तू आई।
तब तें भई सुरंग, मलीन कुसँग बिहाई॥
बरनै दीनदयाल छुटी कटुता सब तेरी।
सुघरी संगति पाय घूर की तुमरी एरी॥१०८॥

तुम्बी तितलौकिया (कड़वी लौकी) की बनती है। घूरेपर होती है इसलिये "घूरी" कहलायी। अर्थ सरल है।

गेंदा

माली की सहि सासना सुनि गेंदे मति भूल।
बिन सिर दै पैहै नहीं वहै हजारे फूल॥
वहै हजारे फूल जौन सुरसीस चढ़ैगो।
दए आपनों आप अधिक तें अधिक बढ़ैगो॥
बरनै दीनदयाल किती तू पैहै लाली।
तेरे ही हित हेत देत सिख तोकों माली॥१०९॥

सासना=दंड। गेंदेके पोधेके सिरे काट काट कर माली कलम लगा देते हैं। इन कलमोंसे बड़े बड़े हजारे फूल होते हैं। लाली=यश।

गुलाब

सुनिये मीत गुलाब अलि क्यों मन रहि है रोकि।
रहत न धीरज रसिक चित कुसुमित कली बिलोकि॥
कुसुमित कली बिलोकि चहूँ दिसि भरत भाँवरी।
ताहि न कंटक बेधि करौ मति बिकल बावरी॥
बरनै दीनदयाल पालि हित अपनो गुनिये।
रस पराग जुत राग सुगंधहि दै जस सुनिये॥११०॥

बावरी=हे बावली कली। शेष सरल है।

नाहीं भूलि गुलाब! तू गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चार की बहुरि कटीली डार॥
बहुरि कटीलो डार होहिंगी ग्रीखम आए।
लुवैं चलैंगी संग अंग सब जैहैं ताए॥
बरनै दीनदयाल फूल जौलों तो पाहीं।
रहे घेरि चहुँ फेरि फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥१११॥

सरल है।

सामान्य कुसुम

मोहै मति सुमना! मना करौ बारही बार।
महाछली है मधुप यह कहा करै इतबार॥
कहा करै इतबार बाहिरै भीतर कारो।
गनि कादिक में रमै चपल भरमै दिसि चारो॥
बरनै दीनदयाल लालची यह रस को है।
सुनि याकी धुनि मन्द माधुरी तें मति मोहै॥११२॥

मधुप=(१) भौंरा (२) शराबी। सुमना=(१) फूल, (२) अच्छे मनवाला। गनिकादिक=(१) चमेलीकी जातिके फूल गणिका आदिक, (२) वेश्या आदिक। रस=(१) मकरन्द, (२) सुख।

श्लेष स्पष्ट है। दोनों पक्षमें अर्थ सरल है।

प्यारे करै गुमान जनि सुन प्रसून! मित्र मोरि।
तो समान इहि बाग में फूलि झरे हैं कोरि॥

फूलि झरे हैं कोरि बहोरि किते बिनसैहैं।
या बहार दिन चारि गए फिरि ग्रीखम ऐहैं॥
बरनै दीनदयाल न कर सारंगहिं न्यारे।
तो गुन जाननिहार बड़े हितकारक प्यारे॥११३॥

इसकी विशद व्याख्या भूमिका भागमें हो चुकी है। सरल भी है। "गुन" का पाठान्तर "रस" भी है।

सों है नहिं सज सुमन! तो अज ढिग नखरोनाज।
कौन आदरै वलि बिना अलि सुरसिक सिरताज॥
अलि सुरसिक सिरताज भाँवरी भरै भाव सों।
रस पराग अनुराग तासु चित लाग चाव सों॥
बरनै दीनदयाल खोलि दृग तेहि किन जोहै।
तो गुन को रिझवार एक यह सारंग सोहै॥११४॥

हे फूल! तेरा साजबाज, नाज-नखरा भगवानके सामने नहीं सोहता। वलि जाऊँ, रसिकोंके सुन्दर सिरताज भौंरेके बिना कौन तेरा आदर करै। वह तो भावसे भरा रहता है। उसका चित्त पराग और मकरन्दके अनुरागमें बड़े चावसे लगा रहता है। आंख खोलकर उसे ही क्यों नहीं देखता? रे फूल! तेरे गुनोंपर रीझने वाला एक यही भौंरा सोहता है॥ ऊपरी दिखावेसे जगत् छला जा सकता है, परन्तु भगवान् नहीं छले जा सकते। उनसे दिखावा करना नहीं सोहता।

सामान्य विहंग

सूको तरु सेवत कहा विहँग देवद्रुम सेव।
सजैं सुकादिक धीर जहँ सुन्यो न ताको भेव॥

सुन्यो न ताको भेव फूल फल सौरभ जा में।
सदा रहै रस लसो वसो कुसुमाकर ता में॥
बरनै दीनदयाल लाल तू तो अति चूको।
सुखद कलपतरु त्यागि दुखद सेवै द्रुम सूको॥११५॥

(१) सूका=सूखा। देवद्रुम=(२) पीपल, कल्पवृक्ष। शुकादिक धीर जहँ=(१) जहां समझदार सुग्गे आदि, (२) जहां शुकदेवादि बुद्धिमान। कुसुमाकर=वसन्त, फूलोंकी खानि। लाल=पक्षी।

अर्थ सरल है।

नहीं तरंगी तीर में हे खग वास बनाय।
यह सुतंत्र, को कहि सकै, दैहै कहूँ बहाय॥
दैहै कहूँ बहाय, हाथ करिकै सिर धुनिहै।
कोऊ नहीं सहाय, पाय दुख, पीछे गुनिहै॥
बरनै दीनदयाल बड़े यह हैं बहुरंगी।
अहैं चपल, बदि चलो, भलो यह नहीं तरंगी॥११६॥

तरङ्गी=नद। अर्थ सरल है।

विशेष विहंग—तत्र शुक।

सुनिए हे सुक यह नहीं सुखद रसाल रसाल।
है सेमल छलरूप मनि भ्रमो सुमन लखि लाल॥
भ्रमो सुमन लखि लाल भँवर रस गंध न पायो।
जानि अँगार चकोर प्यार करि डार लुभायो॥
बरनै दीनदयाल फला याकी पटु गुनिये।
पीछें तूल उड़ाय सून फूलत है सुनिए॥११७॥

तूल=रुई, लम्बाई। रसाल=रससे भरा। आम।

अर्थ सरल है।

नहिं दाड़िम, सैलूस यह, सुक न भूलि श्रम लागि।
दल तें सूलिन को छल्यो चोच बचै तो भागि॥
चोंच बचै तो भागि जाहु ना तो पछतैहो।
याके फल के बीच बड़ो श्रम कछू न पैहो॥
बरनै दीनदयाल लाल लखि लोभ्यो है किम।
यह तो महाकठोर भूलि सुक है नहिं दाड़िम॥ ११८॥

सैलूस=शैलूष, छलिया, नक्काल, बेल, (फ़ा० सालूस)। सूलिन=शूलिन्, शंकर।

भागि=भाग्य। भागजा।

अर्थ सरल है।

तजि कै दाड़िम मूढ़ सुक खान गयो कित बेल।
कांटनि सों बेधित भयो भूलि गयो सब खेल॥
भूलि गयो सब खेल पंख लासा लपटायो।
गिरयो राख में जाय जगत में काग कहायो॥
बरनै दीनदयाल कहा बहु रोवै लजि कै।
करु मति को धिक्कार❀ कठिन सेयो मृदु तजि कै॥११९॥

मूर्ख सुग्गे! अनार छोड़कर तू कहां बेल खाने चला गया? आखिर कांटे चुभे, पंखोंमें लासा लिपट गया, सब खेल भूल गया, राखमें जाकर जो गिरा तो तमाम राख और कोयला लिपट गया, सूरत बदल गयी,

---

❀ "धिक्कार" का पाठान्तर "धिक कोटि" भी है।

लोगोंने कहा शायद कोई कौआ है, अब तू लजाकर क्या इतना रोता है, अपनी मतिको धिक्कार कि कोमल छोड़ कठिन फल खाने गया।

हे सुक प्रीति न कीजिए इन कागन के संग।
कहूँ भुलाय लै जायकै करिहैं चोंचहि भंग॥
करिहैं चोंचहि भंग नारियल फल के माहीं।
निरफल जैहैं सकल कला पै है कछु नाहीं॥
बरनै दीनदयाल जानि इनको दुख हेतुक।
न तु पछतैहै अंत खोय अपनो गुन हे सुक॥१२०॥

अर्थ सरल है।

पछितान्यो इक बेर तू यह सेमल फल बीच।
फिरि सुक सेवन ताहि को लगो कहा रे नीच॥
लगो कहा रे नीच यहै तरु जानत नाहीं।
लखि लखि लाल प्रसून भून मोहत ना माही॥
बरनै दीनदयाल अजौं लगि नहीं पहिचान्यो।
बेर बेर लै तूल भूल महि तू पछितान्यो॥१२१॥

तूल=रुई। अर्थ सरल है।

तोरै चोंच न कीर! तू यह पंजर है लोह।
खुलिहैं खुले कपाटके तजि कुन्दिया को मोह॥
तजि कुन्दिया को मोह यही बंधन है तोको।
जामें प्रेम लगाय छुटन पाए कहु को को॥
बरनै दीनदयाल छुटै जो नेह न जोरै।
तो सजि है आनंद बाग इहि चोंच न तोरै॥१२२॥

कीर=सुग्गा, शुक ।
अर्थ सरल है ।

कोकिल

कोकिल लोचन ललित करि करिय न कोप विखाद ।
भयो कि मूढ़ द्रयो न जो सुनि कै पंचम नाद ॥
सुनि कै पंचम नाद द्रवैं सुर चतुर विवेकी ।
ते न द्रवैं जिहि लगै सुखद बानी कौवे की ।
बरनै दीनदयाल लगै प्रिय साँपनि को बिल ।
कहा करैं ते रंग भौन सुनिये हे कोकिल ॥१२३॥

सुरचतुर विवेकी=जो स्वर पहचानने में चतुर है और अच्छे और बुरे स्वर का जिनमें विवेक है ।
अर्थ सरल है ।

हे पिक पंचम नाद को नहीं भील को ज्ञान ।
यहै रीझिबो मानि तू जो न हनै हिय बान ॥
जो न हनै हिय बान बड़ी करुणा इन केरी ।
मारैं ये मृगजूथ कहा गिनती है तेरी ॥
बरनै दीनदयाल थको रटि के तुम केतिक ।
ये नहिं रीझनिहार जाहु बन को तजि हे पिक ॥१२४॥

अर्थ सरल है ।

कोकिल दिल दै कीर सों करिए प्रेम सुहात ।
दुहूँ रसाल बन सघन के बिहरन-सील कहात ॥

बिहरन-सील कहात कंठ कल कोमल दोऊ।
सुजस जगत के माहिं नाहिं तव पटतर कोऊ॥
बरनै दीनदयाल रहो इनहीं तें हिल मिल।
प्रीति समान बखान करैं कविजन हे कोकिल॥१२५॥

सुहात=सोहनेवाला। कहात=कहावत, कहलाते हो।

व्रजभाषा में "सुहात" की जगह "सुहावनो" और "कहात" की जगह "कहावौ, कहावत" का प्रयोग करते हैं। कहाना, सुहाना, आना, पाना आदि क्रियाओंके मूल रूप कहाव, सुहाव, आव, पाव हैं, और रिसाना, हिराना आदि क्रियाओं के मूल रूप रिसा, हिरा आदि हैं। इसी लिये कहावत, सुहावत, रिसात, जात हिरात आदिरूप होते हैं।

सोरैं कींस करैं महा किलकारैं इत कोल।
काक बलाक जुरे रट कोकिल ह्याँ मति बोल॥
कोकिल ह्याँ मति बोल नहीं इत बान तिहारी।
कहा व्यजन की बाय जहाँ बहु बही बयारी॥
बरनै दीनदयाल किते सुर पंचम जोरैं।
सुनै कौन या ठौर जितै ये खल की सोरैं॥१२६॥

व्यजन=बीजना, पंखा। सोर=शोर।

शोर पुल्लिंग है, परन्तु व्रजभाषामें कोई कोई कवि स्त्रीलिंगमें भी प्रयोग करते हैं। उर्दू में शोर सदा पु० है। जैसे "सौदाके जो बालीं प गया शोरे-क़यामत। खुद्दामें अदब बोले अभी आँख लगी है।"

अर्थ सरल है।

चातक

लागे सर सरवर पस्यो कस्यो चोंच घन ओर।
धनि धनि चातक प्रेम तव पन पाल्यो बरजोर॥
पन पाल्यो बरजोर प्रान परजंत निबाह्यो।
कूप नदी नद ताल सिंधु जल एक न चाह्यो॥
बरनै दीनदयाल स्वाति बिन सबही त्यागे।
रह्यो जन्म भरि बूँद आस अजहूँ सर लागे॥१२७॥

सर=बाण। सरवर=तालाब।
अर्थ सरल है।

बरषा भरि बरषत धरा धाराधर धरि धीर।
कहा दोख चातक तिनै तो मुख पस्यो न नीर॥
तो मुख पस्यो न नीर नदी नद सबही भरिगे।
पालि किये बहु सालि बालिजग मैं जस करिगे॥
बरनै दीनदयाल करो मति तुम आमरषा।
बुझै नहीं तुव प्यास करै जो केतो बरषा॥१२८॥

अर्थ सरल है।

काहे चातक बूंदहित सहत उपल पविपात।
कहा सरित सर सूखिगे जे भूखित जलजात॥
जे भूखित जलजात हंस अवली धवली तें।
सीतल मधुर पुनीत जासु जल भांति भली तें॥
बरनै दीनदयाल तिनै तजि सीकर चाहे।
सोचत लाभ न हानि सहै द्विज दुख को काहे॥१२९॥

भूखित जलजात=कमलोंसे भूषित । द्विज=पत्ती ।

अर्थ सरल है ।

मयूर

बानी मधुरी बास बन परभा परम बिसाल ।
बरही ऐगुन एक अति भखत कुव्याल कराल ॥
भखत कुव्याल कराल चाल या नहीं भली मैं ।
ये सब गुन के जाल जाहिंगे अजस गली मैं ॥
बरनै दीनदयाल हाल गति यह तो जानी ।
कित वह असन भुजंग कितै यह मृदु बर बानी ॥१३०॥

बरही=वर्हि, मोर, मयूर । तो=तेरी । "मृदु बर बानी", पाठान्तर-"मधुरी बानी ।"

अर्थ स्पष्ट है ।

धुरवा नहिं दवधूम है नहिं गरजनि तरु सोर ।
भ्रमबस कूक करै कहा मरै नाच नचि मोर ! ॥
मरै नाच नचि मोर न ए दामिनि की दमकैं ।
एतो घोर हुतास जोर चहुँ ओर सु चमकैं ॥
बरनै दीनदयाल भूलि मति तू मन मुरवा ।
तज यह सिखर कराल, जरैगो, नहिं ये धुरवा ॥१३१॥

धुरवा=बादल । दवधूम=जंगलमें लगी हुई आगका धुआं । हुताश=अग्नि । मुरवा=हे मोर ।

अर्थ सरल है ।

चकोर

सोच न करै चकोर चित कुहू कुनिसा निहारि।
सनै सनै ह्वैहै उदै राका ससि तम टारि॥
राका ससि तम टारि दूरि दुख करिहै तेरो।
धीर धरै किन बीर कहा अकुलाय घनेरो॥
बरनै दीनदयाल लखैगो तू भरि लोचन।
जो तेरो प्रिय प्रान, मिलैगो सो, अब सोच न॥१३२॥

कुहू=पूरी अँधेरी अमावस्याकी रात। राका=पूर्णिमाकी रात।
सनै सनै=शनैः शनैः, धीरे धीरे।
अर्थ सरल है।

सोवै कितै चकोर! तू सफल करै किन नैन।
चार दिना यह चांदनी फिरि अँधियारी रैन॥
फिरि अँधियारी रैन सखे! लखि सोच मरैगो।
सजग रहै नहिं भूलि कालकृत जाल परैगो॥
बरनै दीनदयाल लाल! यह काल न खोवै।
रोम रोम प्रति सोम कला फैली कित सोवै॥१३३॥

सरल है।

पतंग

वै तो मानत तोहि नहिं तैं कित भस्रो उमंग।
नहिं दीपहि कछु दरद क्यों जरि जरि मरै पतंग॥
जरि जरि मरै पतंग तासु ढिग कदर न तेरी।
तू अपनो हित जानि भाँवरै भरत घनेरी॥

बरनै दीनदयाल प्रानप्रिय मान्यो तैं तो।
मुख मलीन करि रहैं चहैं नहिं तोको वै तो ॥१३४॥

स्पष्ट है।

उलूक

हे रे अंध उलूक तू दुरो दरी मैं नीच।
तेरे जान नहीं उदै भये भानु नभ बीच॥
भये भानु नभ बीच सकल जग तासु अधीने।
तू एकै खल कूर कहा तो निंदा कीने॥
बरनै दीनदयाल दोख जनि दै उन केरे।
अपनो भाग बिचार उतै बुध बंदत हेरे ॥१३५॥

दरी=खोह। कूर=मनहूस। तो=तेरे।
अर्थ सरल है।

बायस (कौवा)

बायस तू ! पिक मध्य ह्वै कहा करै अभिमान।
ह्वै है बंस सुभाव की बोलत ही पहिचान॥
बोलत ही पहिचान कानकटु तेरी बनी।
वे पंचम धुनि मंजु करैं जेहि कविन बखानी॥
बरनै दीनदयाल कोऊ जौं परसै पायस।
तऊ तजै न मलीन मलहि खाये बिन बायस ॥१३६॥

पायस=खीर।
अर्थ सरल है।

हे रे काग कठोर रट कीरहि दूखत काह ।
सुनि के इनकी मधुर धुनि मोहत हैं नरनाह ॥
मोहत हैं नरनाह हेम पंजर मैं राखैं ।
इनहीं के मुख लखैं वैन इनके अभिलाखैं ॥
बरनै दीनदयाल लगै विख लों तव टेरे ।
कोपै सव इहि लागि भागि ह्याँ ते खल हे रे ॥१३७॥

अर्थ सरल है ।

वासा

वासा यहि तरु पै तुमैं वासा वासर एक ।
वक नहिं इत व्याधा जुरे वहरी और अनेक ॥
बहरी और अनेक का कहाँ बाज रहै ना ।
जाल परेवा होय जौन दुख सो कहु मैना ॥
बरनै दीनदयाल करै तू केकी आसा ।
लाल मानि अव टेर भजो सर आवत वासा ॥१३८॥

वासा=बासा पक्षी, ठहरना, टिकना । बक=बगला, बकवाद । बहरी=बहरी पक्षी, बाहरी । बाज रहै=बाजपक्षी रहै, माने, रुके । केकी=मोर, किसकी ।

ब्रजभाषाके अनुसार किसकीके लिये "काकी" चाहिये, पर श्लेप या मुद्रालंकार के लिये क्षम्य है ।

लाल=चिड़िया, हे प्यारे । परेवा=कबूतर, पड़ेगा ।

हे वासा, इस पेड़पर तुम्हें एक ही दिन टिकना है । बकबक न कर यहाँ बहुतसे बाहरी लोग और व्याधा जुटे हैं । यह नहीं मानते । या जा

में फँसनेपर जो दुःख होता है, सो तू ही कह, मैं न कहूँगा। तू किसकी आशा करता है, प्यारे, मेरी टेर मानकर भागो, देखो हे बासा, वह बाण आ रहा है"। श्लेषके साथ पक्षियों के नाम पर मुद्रालंकारकी भी बहार है। पक्षियोंके पक्षमें अर्थ सरल है, इसलिये यहां वह पक्ष नहीं दिया गया।

सिंह

टूटे नख रद केहरी वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइ कै यह दुख दियो बढ़ाय॥
यह दुख दियो बढ़ाय चहूँ दिसि जंबुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि स्वतंत्र करैं सब राजैं॥
बरनै दीनदयाल हरिन बिहरैं सुख लूटे।
पंगु भयो मृगराज आज नख रद के टूटे॥१३९॥

जरा=बुढ़ापा। जंबुक=स्यार, ससक=खरहा।
अर्थ सरल है।

मातंग

भाजत हे जिहि त्रास तें दिग्गज दीरघ दंत।
नाहर नहिं नेरे फिरैं देखि बड़ो बलवंत॥
देखि बड़ो बलवंत गिरैं गिरि कंदर दरतें।
नदी कूल कुज मूल परसि बिनसैं रद करतें॥
बरनै दीनदयाल रह्यो जो सब पै गाजत।
अहो सोई गजराज आज कलभन तें भाजत॥१४०॥

मातंग=हाथी। भाजत हे=भागते थे। कुज=वृक्ष। कलभ=

हाथीका बचा। दरतें=डरसे।

अर्थ सरल है।

तोरै मति तरु मूल तें फूल सहित हित नूर।
अरे निरंकुस दुरद बद दुखद महामद पूर॥
दुखद महामद पूर लखै नहिं याकी सोभा।
फलदल भल सुखदानि सकल जग जातें लोभा॥
बरनै दीनदयाल प्रेम जो सब तें जोरै।
सो उपकारो मानि मीतता प्रीति न तोरै ॥१४१॥

हितनूर=शोभाकी खातिर। दुरद=द्विरद, हाथी। बद=बुरा, कडु। मीतता=मित्रता।

अर्थ सरल है।

वारन! वारन मति करै ए सारंग सुख दानि।
हे मदमाते अंधमति ह्वै है तुव छविहानि॥
ह्वै है तुव छविहानि नहीं छति कछु अलिगन की।
करिहैं प्रभा प्रकास बिकच बरबारिज बन की॥
बरनै दीनदयाल जाय जान्यों नहिं कारन।
बिभौ बिनासि बिसोक बिपिन मैं बिहरै वारन ॥१४२॥

जवानीमें हाथीके गालसे जब मद टपकता है तब वह मस्त रहता है। भौंरे मदके लोभसे घेरे रहते हैं। ऐसेही मस्त हाथीका इस कुंडलिया में संबोधन है। वारन=हाथी, मना करना, रोकना। सारंग=भौंरा। विकच=खिला हुआ। विभव=बड़प्पनकी सामग्री। प्रभा=शोभा।

अर्थ सरल है।

आयो हुतो सरोज तजि बड़ी दूर तें भौंर।
दान देन पीछे रह्यो मारि गिरायो ठौर॥
मारि गिरायो ठौर गौर गज कछू न कीनो।
तुम तो कृतघन बने प्रभा तजि अपजस लीनो॥
बरनै दीनदयाल बूझि बेदन यों गायो।
सुख यहि जग के माहिं समद तें किनको आयो॥१४३॥

प्रभा=शोभा। बूझि=समझ। समद=मतवाला।
अर्थ सरल है।

भूपन तें आदर लयो दल को भयो सिंगार।
अजहूँ तजी न बानि गज सिर पर डारत छार॥
सिर पर डारत छार झूल डारे मखमल की।
चल्यो हठीली चाल भयो जग सीमा बल की॥
बरनै दीनदयाल होत नहिं कछु रूपन तें।
छुटै न बंस सुभाय पाय आदर भूपन तें॥१४४॥

भयो जग सीमा बलकी=जगत में बलकी सीमा बन गया। सबसे बलवान समझा जाने लगा। यहांतक कि बलका प्रमाण माना जाने लगा। भीमका बल वर्णन करते हैं कि उनको एक हज़ार हाथी का बल था।

अर्थ स्पष्ट है।

तुरंग

घोरे नीकी चाल चल जातें होय बखान।
छंडि ऐब दै आद की पछलत्तिहुँ जनि ठान॥

पछ्लन्तिहुँ जनि ठान सान सों कदम दीजिये।
बहकि चलै मति राह सीख सिर मानि लीजिये॥
बरनै दीनदयाल समर तें भागि न भोरे।
मालिक केसंग घाय खाय बनिहैं हे घोरे॥१४५॥

अर्थ सरल है।

कुरंग

धावै कहा कुरंग ए नहिं है तोय तरंग।
एतो घोर निदाघ की रविकिरनैं बहुरंग॥
रविकिरनैं बहुरंग देश मारू यह जानौ।
इतै न छाया कहीं नहीं विश्राम ठिकानौ॥
बरनै दीनदयाल सुधा जल प्यास न जावै।
हे कुरंग तजि गङ्ग कहा मारू थल धावै॥१४६॥

तोय=जल। निदाघ=घाम, धूप। मारू=मरु, बालुका समुद्र।

रवि किरनैं बहुरंग=भांति भांतिकी सूर्य्यकी किरणें, जो गरम हवामें टूटी सी दीखती है और जिनके हिलनेसे दूरसे जलका तरंग सा दीखता है। इसी भ्रमको "मरीचिका" (mirage) मृग-तृष्णा आदि कहते हैं। अर्थ सरल है।

तेरे ही बिच वस्तु वह जाको जगत सुगन्ध।
खोजत कहा कुरङ्ग तू! अंबक आछत अंध॥
अंबक आछत अंध कहा दिसि दिसि भरमैहै।
अपनी दिशि अवलोक तबै वाको सुख पैहै॥
बरनै दीनदयाल मिलै नहिं बाहर हेरे।
अंतर्मुख ह्वै ढूंढ़ सुगन्ध सबै घट तेरे॥१४७॥

अंबक आछत=आंखके होते हुए भी। अर्थ सरल है।

जंबुक

कैसौ आयो काल यह गरजन लगे शृगाल।
गाल बजाय कुटिल कहैं कहा केहरी माल॥
कहा केहरी माल ससन के बीच बकैहैं।
पीछे निन्दैं नीच मीच को नाहिं तकैहैं॥
बरनै दीनदयाल कठिन दिन आयो ऐसो।
ये बद हद मद करैं जंबुकन के गन कैसो॥१४८॥

बद=खोटे। हदमद=बड़ा गरूर। जंबुक=गीदड़।
अर्थ सरल है।

शूकर

सुनि रे शूकर नीचतर कहा करै अभिमान।
जीत्यो मैं यों बकत क्यों अति मृगपति बलवान॥
अति मृगपति बलवान जगत जानै तेहि बल को।
तू मलीन मतिहीन सदा सेवै मल थल को॥
बरनै दीनदयाल आपने बल को गुनि रे।
कहाँ प्रबल मृगराज कहाँ लघु शूकर सुनि रे॥१४९॥

सरल है।

शशक

बांके सर नाके धरे करे भयानक भेख।
किते छिप्यो तृन ओट मैं ससे खोलि दृग देख॥

ससे खोलि दृग देख भाग आनंद घन वन मैं।
नातो ताको सही हन्यो चाहत कोउ छन मैं॥
बरनै दीनदयाल कहा ह्वै है दृग ढाँके।
हर छुटिहैं नहिं व्याध लिये सर आवत बाँके॥१५०॥

बांके सर नांके धरे=बांके शर धरे+नाके धरे। बांके=तेज़। शर=बाण। नाके धरे=तेरे भागने की राह रोके हुए, नाकेबन्दी किये हुए।

अर्थ सरल है।

दोहा

यह अन्योक्ति-सुकल्पद्रुम साखा दुतिय बखानि।
बिरची दीनदयालगिरि कवि द्विजवर सुखदानि॥१५१॥

इति श्रीकाशीवासी दीनदयालगिरिविरचिते अन्योक्तिकल्पद्रुमग्रन्थे द्वितीया शाखा समाप्ता॥

तीसरी शाखा

मनुष्य जाति विशेष । ब्राह्मण ।

हे पांड़े यह बात को को समुझै या ठाँव ।
इतै न कोऊ हैं सुधी यह ग्वारन को गाँव ॥
यह ग्वारन को गाँव नाँव नहिं सूधे बोलैं ।
बसैं पसुन के संग अंग ऐंड़े करि डोलैं ॥
बरनै दीनदयाल छाँछ भरि लीजै भांड़े ।
कहा कहो इतिहास सुनै को इत हे पांड़े ॥१५२॥

सुधी=अच्छी बुद्धिवाले । ऐंड़े=ऐंठे । भांड़े=बरतन में ।
अर्थ सरल है ।

क्षत्रिय

पैहौ कीरति जगत में पीछे धरो न पाँव ।
छत्रीकुल के तिलक हे महासमर या ठाँव ॥
महासमर या ठाँव चलैं सर कुंत कृपानैं ।
रहे वीरगण गाजि पीर उर में नहिं आनैं ॥
बरनै दीनदयाल हरखि जो तेग चलैहौ ।
ह्वै हौ जीते जसी मरे सुरलोकहिं पैहौ ॥१५३॥

कुन्त=बरछी, भाला ।
सरल है ।

बरनै दीनदयाल भूमि भरमै कित खाली।
जाको बरनै वेद सोई यह चंदन माली॥१५६॥

सरल है।

आली चंदन की न क्यों पाली माली क्रूर।
मतवाली मति तो भई सींचत बेरि बबूर॥
सींचत बेरि बबूर दुखद कंटक हैं ताके।
सेवत क्यों नहिं अंध गंध मुदकर वर जाके॥
बरनै दीनदयाल सबै श्रम जैहै खाली।
पालत है किन ताप-समन चंदन की आली॥१५७॥

आली=क्यारी। चार बिस्वेके बराबर क्षेत्र (पहाड़ी हिन्दी)।
सरल है।

माली नींब रसाल संग लाय करी अनरीत।
काग आम पिक नींब पै बैठारे बिपरीत॥
बैठारे बिपरीत रीति तूं कछू न बूझै।
स्याम स्याम सब एक नहीं ऐगुन गुन सूझै॥
बरनै दीनदयाल कौन यह तेरी चाली।
कोकिल तें करि ऊंच काग को मानत माली॥१५८॥

अर्थ सरल है

कुलाल

कैसो मद में है भरो याकी करो पिछान।
यहि कुलाल को देखिए अहो प्रपंच-निधान॥

अहो प्रपंच-निघान रंच काहू नहिं मान।
आपै बनै विरंचि समो बहु रचना ठानै॥
बरनै दीनदयाल समै अब आयो ऐसो।
विधि की समता करै कुलाल कूर यह कैसो॥१५९॥

कुलाल=कुम्हार, कुंभकार। प्रपंच-निधान=विश्व के रचयिता।
अर्थ सरल है।

दरजी

दरजी सीवत तोहि गे दिन बहु बरनै कौन।
कौन बीच बसि क्या करै अंधकार इहि भौन॥
अंधकार इहि भौन आय के छाय रह्यो है।
टूट गई है सुई सूत अरुझाय रह्यो है॥
बरनै दीनदयाल लोग सब अपने गरजी।
जामा जीरन भयो कहा अब सीवै दरजी॥१६०॥

अर्थ सरल है।

रजक

एरे मेरे धोबिया तोसों भाखत टेरि।
ऐसी धोनी धोइ, जो मैलो होय न फेरि॥
मैलो होय न फेरि चीर इहि तीर न आवै।
साबुन लाउ विचार मैल जावें छुटि जावै॥
बरनै दीनदयाल रग चढ़िहै चहुँ फेरे।
जो तू दैहै धोय भले जल उज्जल एरे॥१६१॥

अर्थ सरल है।

नट

धारत नट बहु स्वाँग हो कला अनेक प्रवीन।
कबहूँ करी न वह कला जहाँ कला सब लीन॥
जहाँ कला सब लीन कला सफला है सोई।
और कला जग चला जथा चपला घन होई॥
बरनै दीनदयाल भागि जनि आगि निहारत।
धरे सती को स्वाँग कहा पग पीछे धारत॥१६२॥

अर्थ सरल है।

राजा ह्याँ है आँधरो मूक बहिर अज्ञान।
सभा सबै तैसी भरी ताने कहा वितान॥
ताने कहा वितान अरे नट बुद्धि-विहीने।
लखै सराहै कौन सुनै गो दृगश्रुति हीने॥
बरनै दीनदयाल सुनाट्य-कला सुर बाजा।
ह्वैहैं बनके फूल, भूल मति तू, गुनि राजा॥१६३॥

वितान=रंग मंचके लिये चँदोवा। गुनि राजा=राजा समझ कर। बनके फूल ह्वै है=जैसे बनमें फूल खिलते हैं, गिरते हैं, मुरझा जाते हैं, कोई उनका गुणग्राहक नहीं होता, वैसे ही इनको भी बात पूछनेवाला यहाँ कोई नहीं है।

शेष स्पष्ट है।

दारुनटी (कठपुतली)

तेरी है कछु गति नहीं दारु चीर को मोल।
करै कपट-पट ओट मैं वह नट सबही खेल॥

वह नट सबही खेल खेलि फिर दूर रहै है।
द्वै बिन बनै प्रपंच कहो को क्रूर कहैहै॥
बरनै दीनदयाल कला वा पै बहुतेरी।
जो जो चाहै नाँच कढ़ै सो सो गति तेरी॥१६४॥

द्वै बिन......कहै है=कौन मूर्ख कहता है कि बिना दोके, बिना कठपुतली और सूत्रधारके, यह प्रपंच बन जाता है। अर्थात् बिना पुरुष और प्रकृतिके इस विश्व प्रपंचकी रचना कभी नहीं हो सकती। (उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत रामगोसाईं।)

नटी

नीकी विधि चलिरी नटी अति सूक्षम यह राह॥
राम राम मुख ध्यान पग ह्वै है तबै निबाह॥
ह्वै है तबै निबाह सबै गो गोचर अपने।
बस करके चलि सूध नहीं चित चालै सपने॥
बरनै दीनदयाल डिगे फिर खोज न जी की।
ये सब देखनिहार न दैहैं उपमा नीकी॥१६५

शब्दार्थ सरल है।

ग्वालिनी

बारि बिलोवै डारि दधि अरी आँधरी ग्वारि।
ह्वै है श्रम तेरो वृथा नहिं पैहै घृत हारि॥
नहिं पैहै घृत हारि हँसैगी सखी सयानी।
तू अपने मन मान रही घर की ठकुरानी॥

बरनै दीनदयाल कहा दिन योंही खोवै।
पछतैहै री अंत कंत ढिग बारि बिलोवै ॥१६६॥

शब्दार्थ सरल है।

किरातिनी

गुञ्जन को बन देखि कै मुकुतन दीनी त्यागि।
अरी अबूझ किरातिनी धिक धिक तेरी लागि॥
धिक धिक तेरी लागि न ऐगुन गुन पहिचानै।
ऊपर ही के रंग ठगी मतिमूढ़ न जानै॥
बरनै दीनदयाल परी यह तो सब कुंजन।
कौड़ी याको मोल लाल लखि भूलि न गुञ्जन ॥१६७॥

गुंजा=घुँघची। मुकुतन=मोतियों को, मुक्त पुरुषों को। लागि=लगन।

पनिहारिन

पनिहारिन इहि सरपरे लरति रही सब पाँह।
रीतो घट लै घर चली उतै मारिहै नाह॥
उतै मारिहै नाह काह तिहि उत्तर दैहै।
रोय रोय पति खोय फेरि सर पै फिरि ऐहै॥
बरनै दीनदयाल इतै हँसिहैं सब नारी।
ख्वारी दुहुँ दिसि परी अरी ग्वारी पनिहारी ॥१६८॥

रीतो=रिक्त, खाली। पतिखोय=इज्जत गँवाकर। फेरि सर पै फिरि ऐहै=फिर तालाब पर लौट आवेगी। (यहां फेरि और फिरि पुनरुक्तिवत

आभासित होते हैं, परन्तु पुनरुक्ति नहीं है। पुनरुक्तिवदाभास है।)
खारी=खराबी। ग्वारी=गँवारी।

अर्थ सरल है।

तमोलिनी

बौरी दौरी में धरे बिन सींचे मति भूल।
फेरै क्यों न तमोलिनी! सूखै सड़ै तमूल॥
सूखै सड़ै तमूल बहुरि पीछे पछतैहै।
ऐहै गाहक लैन कहा तब ताको दैहै॥
बरनै दीनदयाल चूक जनि तू इहि ठौरी।
आछी भाँति सुधारि वस्तु अपनी रखि बौरी॥१६९॥

तमूल=पान।
अर्थ सरल है।

किसान

आछी भाँति सुधारि कै खेत किसान त्रिजोय।
नतु पीछे पछतायगो समै गयो जब खोय॥
समै गयो जब खोय नहीं फिरि खेती ह्वै है।
लैहै हाकिम पोत कहा तब ताको दैहै॥
बरनै दीनदयाल चाल तज तू अब पाछी।
मोड़ न, सालि सम्हालि त्रिहंगन तें विधि आछी॥१७०॥

विजोय=बो, बीज डाल। पोत=लगान। महसूल। पाछी=पीछे
वाली।

अर्थ सरल है।

गढ़धनी

साथी पाथी भे सबै, गढ़ी ढहै चहुँ फेरि।
आनि बनी अरि की अनी धनी खोलि दृग हेरि॥
धनी खोलि दृग हेरि धवल धुज आय बिराजे।
बोलन लगे नकीब डंक अब तो तिहुँ बाजे॥
बरनै दीनदयाल साजि अब अपनो हाथी।
हरि को टेर सहाय गये सब तेरे साथी॥१७१॥

पाथी=राही। अनी=अनीक, सेना। धवल धुज=सफेद ध्वजा। सफेद बाल।

नकीब=चारण, वन्दीजन। डंक अब तो तिहुँ बाजे=अब तीनों काल डंके बजने लगे। गढ़ धनी=गढ़ (शरीर) का मालिक (जीव)। बुढ़ापा आगया। कालका डंका बजरहा है, चलने की तय्यारी कर। अर्थ सरल है।

चौपर-खेलारी

अहे खेलारी चूक मति पंजा बिखे सम्हाल॥
परो दाव तेरो खरो करि लै सारी लाल॥
करि लै सारी लाल लाल निज चाल न छूटै।
सनमुख ही मुख राखि देख जुग कहू न फूटै॥
बरनै दीनदयाल जाति बाजी इहि बारी।
हारी मूढ़न संग बार बहु अहे खेलारी॥१७२॥

पंजाविखे=शब्दादि। पंजा=पंजवाला दावँ। सारी लाल करिलै=सब गोटियाँ जीत ले। हे लाल=हे प्यारे। सनमुख......फूटै=बाजीसे निगाह न हटे नहीं तो जुगकी किसी गोटीको फोड़नेकी भूल कर

बैठेगा। ओ खेलाड़ी जीव, चूकना मत, पांचों विषयोंको अपने कावूमें रख, अबके तेरा अच्छा दावँ पड़ा (कि तु मनुष्य हुआ है) अपनी मारी गोटियाँ लाल कर ले, अच्छी चालमें चूक न पड़े। सदा भगवानके सन्मुख रह, वहांसे ध्यान हटा कि वाजी कमजोर हुई अबके वाजी जाता है, ओ खेलाड़ी मूढ़ों के संग बहुत बार तू हार चुका है।

चंग-उड़ायक

कांचे गुन छाड़ै नहीं अरे उड़ायक क्रूर।
जै है करतें टूटि कै उड़ी गुड़ी कहुँ दूर॥
उड़ी गुड़ी कहुँ दूरि लूटि लरिका सब लैहैं।
तो को जानि गँवार हंसी करतारी दैहैं॥
बरनै दीनदयाल माँजु गुन को बिन जाँचे।
ह्वै है गुनी प्रवीन छाँड़ि जनि तू गुन काँचे॥१७३॥

अन्वय—"अरे क्रूर उड़ायक, गुन (को) कांचे नहीं छांड़ (नहीं तो) करतें टूटिकै गुड़ी कहूँ दूर उड़ि जैहै, सब लरिका लूटि लैहैं, तोको गवाँर जानि हँसी (में) करतारी दै हैं। बिन जाँचे गुन का मांज, गुन तू कांचे जनि छोड़ (तौ तू) गुनी प्रवीन ह्वै है।"

अर्थ सरल है।

जौहरी

मैली थैली लखि न तू भ्रमै प्रेम करि खोल।
अहे जौहरी है खरी या में मनि अनमोल॥
या में मनि अनमोल तोल करि ताकी लीजै।
कीजै कछू न खोटि, कोटि धन तापै दीजै॥

बरनै दीनदयाल यथा मजनू मन लैली।
तैसे ही अनुराग त्यागि मति मैली थैली ॥१७४॥

मजनू, अरबके एक प्रसिद्ध प्रेमीका नाम है जिसने अपनी प्रियतमा लैलीके प्रेममें अनेक कष्ट उठाये और कड़ी तपस्या की। यह लैली स्वयं काली कलूटी थी। इसके सौन्दर्य्यसे मजनूके मनमें प्रेमका उद्रेक नहीं हुआ था। फारसीमें एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि "लैलीको मजनूं की आंखोंसे देखना चाहिये।"

नीकी मुकुतन की लरी पै ह्याँ गाहक नाहिं।
इत सबरी सबरी भरीं सगरी नगरी माहिं॥
सगरी नगरो माहिं फिरनहारी कुंजन की।
कबरी-भारनि रचै आनि अबरी गुंजन की॥
बरनै दीनदयाल बूझ कैसी तब ही की।
अहे जौहरी जौन कौन पै बरनै नीकी ॥१७५॥

सबरी=(१) सबकी सब। (२) भिल्लिनी। (मिलान करो,

करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।
है गंधी मति अंध तू अतर दिखावत काहि।)

सौदागर

सौदागर तू समुझि कै सौदा करि इहि हाट!
जैहै उठि दिन दोय मैं पछितैहै फिरि बाट॥
पछितैहै फिरि बाट वस्तु कछु भली न लीनी।
योंही लंपट होय खोय सब सम्पति दीनी॥

बरनै दीनदयाल कौन विधि ह्वै है आदर।
गये आपने देश विना सौदा सौदागर॥१७६॥

लम्पट=व्यभिचारी।

अर्थ सरल है।

चित्रकार

क्यों है भूलत लखि इन्हैं अरे चितेरे चेत।
ए तो अपने ऐन में रचे आपने हेत॥
रचे आपने हेत चराचर चित्रहिं तूने।
डरै भ्रमै मति तोहि विना हैं ये सब सूने॥
बरनै दीनदयाल चरित अति अचरज या है।
रंगे आपने रंग तिनै लखि भूलत क्या है॥१७७॥

ऐन=अयन=घर, मार्ग।

ओ आत्मा चितेरे, यह सारा विश्व तेरा ही रचा है। अपनी ही रचनामें आप फँसकर क्यों भूलता है।

पाहरू

सुनिये एहो पाहरू कहौं तिहारे हेत।
औरन को टेरत फिरो निज घर को नहिं चेत॥
निज घर को नहिं चेत चोर चोरै धन जावैं।
घर की आग बुझाय सबै वाहिरै बुझावैं॥
बरनै दीनदयाल आपने ही चित गुनिये।
वित हू जैहै, लोग हँसैंगे सिगरे, सुनिये॥१७८॥

अर्थ सरल है।

छैल

ए जू छैल छबील मन तुमै कहौं समुझाय।
यह काजर की ओबरी निकरो अंग बचाय॥
निकरो अंग बचाय चातुरी तो जग जागे।
सिर पै चादर सेत बीच जो दाग न लागै॥
बरनै दीनदयाल बोध यह बुधन दये जू।
को न कुसंगति पाय कुलीन मलीन भये जू॥१७९॥

काजलकी ओबरी=काजलकी कोठरी, सर्वथा कलङ्ककी जगह।
अर्थ सरल है।

बजंत्री

अहे बजंत्री हरिन-भ्रम कहा बजावै बीन।
या ठठेर-मंजारिका सुर सुनि मोहैगी न॥
सुर सुनि मोहैगी न सुने इन ठकठक बाजैं।
किते थके करि कला अजौं नहिं आवति लाजैं॥
बरनै दीनदयाल कहा याके ढिग तंत्री।
ह्यांते होय निरास जाय घर अहे बजंत्री॥१८०॥

ठठेर मंजारिका=ठठेरेकी बिल्ली जो ठकठक शब्द सुनते सुनते मामूली शब्दोंसे नहीं डरती और न सुरीले शब्दोंपर ही रीझ सकती है। इसके कानोंमें कर्णकटु शब्द बस गये हैं।

मृदंग

सारंगी हित त्यागि कित रह्यो मृदंग दुराय।
करिहै सिर पै थाप लै धिगधिग तू सिख पाय॥

धिग धिग तू सिख पाय तबै कछु मधुर बोलिहै।
सुघर बजंत्री जबहि पिंड गहि पटहिं खोलिहै॥
बरनै दीनदयाल ढूंढ़ि गुर सुर मिलि संगी।
मिलो तहाँ चलि जहाँ बीन बाजत सारंगी॥१८१॥

मृदंग=एक प्रसिद्ध बाजा जो छोटेसे पीपेके आकारका होता है। इसके दोनों ओर बद्धियोंसे कसा हुआ गोल चमड़ा चढ़ा रहता है। दहनी ओरके चमड़ेपर लोहचून भावें सरेस मंगरैजे और तेलके मिश्रणकी एकटिकिया चिपकाकर चिकने पत्थरसे घोंटी हुई रहती है। इसेपिंड कहते हैं। पिंडपर हाथ रख बद्धीको बजंत्री खींचता है और स्वरको यथेच्छा उतारता चढ़ाता है और थाप दे देकर स्वर देखता आता है। और साजों के साथ ही मृदंग बजाते हैं। उसमेंसे "धिग धिग" शब्द भी निकलता है।

इस कुंडलियाका अर्थ सरल है।

शंख

जनमे हौ बरकुल विपे जग गुन गने असंख।
बजे विजै बहु बार पै रहे संख के संख॥
रहे संख के संख संख तुम हो भीतर तें।
कहा करो अभिमान धखो हरि जो निज कर तें॥
बरनै दीनदयाल विमल छवि छाई तन में।
ऊंच नीच मुख लगो कहा भो बर कुल जनमे॥१८२॥

विजै=विजयके अवसरपर। रहे संख के संख=खोखले या मूर्ख ही रह गये। ऊंच नीच मुख लगो=ऊँच नीच सबके मुँह लगते हो (१) सभी बजाते हैं, (२) तुम सबसे बाजते हो, अर्थात् लड़ते हो। अर्थ सरल है।

पाषाण

मूरुख हृदय कठोर लखि हारे करि करि मान।
तातें मज्जत जल विषे अहो सलज्ज पखान॥
अहो सलज्ज पखान बड़ी तुम मैं गरुआई।
जारे तें जुरि जात अहैं ये द्वै अधिकाई॥
बरनै दीनदयाल कितो करिये वह पूरुख।
जुरै न लाये हेत, होत अतिसै जो मूरुख॥१८३॥

जारें ते जुरि जात=अत्यंत प्रचंड आँचमें पिघलकर जुट भी जाते हो। "कितो करिये......अतिशय जो मूरुख="कि तो करिये, वह पूरुप जो अतिसय मूरुख होत (है), हेत लाये (हू) न जुरै।" यह अन्वय है।

अर्थ सरल है।

बाण

हे सर परबस नहिं करो कुटिल धनुख सो संग।
सूधे हौ, कहुँ फेकिहै, टूटि जाहिंगे अंग॥
टूटि जाहिंगे अंग अंग तासों निबहै नहिं।
गुन पै राचै कहा कोटि रचना याके महिं॥
बरनै दीनदयाल कहाँ कारिख कहं केसर।
तैसेई है संग बंक सूधे को हे सार॥१८४॥

राचे=प्रेम किया, रीझे। गुन पै......याके महिं=(१) ऊपरी गुणोंपर क्या रीझे हो, इसके उर अन्तरमें करोड़ों तरह की बनावट है (२) इसकी प्रत्यंचापर क्या रीझे हो, इसमें तो इसके सिरे बड़े ही

ढंग से बने हुए हैं। कोटि=करोड़। धनुषका दोनों ओर अन्तिम फिरा हुआ भाग ॥

शेष सरल है।

अंग-विशेष—तत्र रसना

रसना ए तो दशन हैं सुनि द्विजनाम न मोहि।
इन्हैं न पंडित मानिये खंडित करिहैं तोहि॥
खंडित करिहैं तोहि रहो निज रूप बचाये।
तातें बहुत कठोर जोर इन चने चवाये॥
बरनै दीनदयाल समुझि इनके संग बस ना।
ऊपर उज्वल रूप देखि मति मोहै रसना॥१८५॥

बसना=बस नहीं चलता। [बसनाका अर्थ रहना निवास करना भी हो सकता है, परन्तु व्रजभाषामें इस प्रसंगमें "बसियो" रूप होता। व्रजभाषाके साथ खड़ी बोलीका रूप असंगत है।] दसन=दाँत, काटनेवाले। जोर=बहुत।

नयन

सपने हूँ व्रजराज छवि लखी न तुम हे नैन।
तातें भटके फिरत हौ लहौ कहूं नहिं चैन॥
लहौ कहूं नहिं चैन रूप जग के सेमल से।
चले गये नहिं कौन सुमन सुक केते छल से॥
बरनै दीनदयाल गुनौ तुम अंतर अपने।
ढके पलक के खलक रूप ह्वै हैं सब सपने॥१८६॥

रूप जगके सेमलसे=जगत्के रूप सेमलसे हैं; (सेमलका पेड़

बड़ा तो होता है, उसमें लाल लाल देखनेमें सुन्दर फल लगते हैं, पर फलमें नीरस रूई होती है। उसी तरह जगत् भी विशाल, सुरूप है परन्तु नीरस है।) सुमन सुक=अच्छे मनवाले रूपपर रीझनेवाले शुक, जीव। खलक=सृष्टि, ढके पलक=मरनेपर।

श्रवन

खोये दिन वहु श्रवन हे सुनत वृथा बकबाद।
सुने न हरिहर मधुर जस जासु सुधासम स्वाद॥
जासु सुधा सम स्वाद अमर पद देत सुने तें।
थके धीर गुन गाय छके रस पाय न केते॥
बरनै दीनदयाल काल तुम बादि बिगोये।
अजहूं सुनि करि प्यार कहा दिन डारत खोये॥१८७॥

बादि=व्यर्थ। बिगोये=खोये।
अर्थ सरल है।

दोहा

यह अन्योक्ति-सुकल्पद्रुम साखा तृतिय बखानि।
बिरची दीनदयालगिरि कवि द्विजवर सुखदानि॥१८८॥

इति श्रीकाशीवासी दीनदयालगिरिविरचिते अन्योक्तिकल्पद्रुमग्रन्थे तृतीया शाखा समाप्ता॥

चौथी शाखा

कैवर्त्तक--(सिंहावलोकन)

तारे तुम बहु पथिन को यह नद धार अपार।
पार करो इहि दीन को पावन खेवनिहार॥
पावन खेवनिहार तजो जनि क्रूर कुवरनैं।
बरनैं नहीं सुजान, प्रेम लखि लेहिं सुबरनैं॥
बरनै दीनदयाल नाव गुन हाथ तिहारे।
हारे को सब भाँति सुबनिहै पार उतारे॥१८९॥

क्रूर=पापी । कुवरनै=नीचजातिको । बरनै=चुनकर अलग निकालना । सुबरनै=स्वर्णरूप प्रेमको । नावगुन=(१) नावकी डोरी, (२) नाम और गुण । बरनै नहीं......सुबरनै=चतुर लोग चुनकर अलग नहीं करते वरन् शुद्ध वर्ण रूप प्रेमको लखकर, ग्रहण कर लेते हैं।

हे भगवान्! इस अपार भवसरितसे पार करो, मेरी नीचता देखकर संकोच न करो, यही भाव है।

यहाँ यमकानुप्रासके लिये वरण करनेके अर्थमें चौथे चरणमें "बरनै" रूपका प्रयोग हुआ है परन्तु प्रचलित रूप "वरैं" होता।

पथिक—(सिंहावलोकन)

मारे जैहो पथिक हे या पथ है बटपार।
पार होन पैहो नहीं मारि डारिहैं वार॥
मारि डारिहैं वार भजो ये फिरैं अनेरैं।
नेर तुमको कोपि तकैं ज्यों बाज बटेरैं॥

टेरैं दीनदयाल सुनो हित हेत तिहारे।
हारे परिहो सखे, राख धन, कहे हमारे ॥१९०॥

बटपार=(बट) बाटमें (पार) पड़नेवाले, राहमें डाका पड़नेवाले राहमें लूट लेनेवाले, ठग, रहज़न। अनेरैं=व्यर्थ, झूठमूठको, झूठे दुष्ट। वार=इस पार। नेरैं=पास। हारे परिहो=थक जानेपर बरबाद हो जाओगे। राख धन=धन की रक्षा करो।

अर्थ सरल है।

राही खड़े अशोक क्यों ? बकुलध्यान यह बेल।
है डकैत, छाया तजो, लख्यो न याको खेल॥
लख्यो न याको खेल सिरसि याकर बर चोटैं।
कोऊ नहिं सहकार अकेला लगिहो लोटैं॥
बरनै दीनदयाल जटे इन जटी न काही।
जाहु चले या बेर कदम गहि पति लै राही॥१९१॥

वृक्षोंके नामपर मुद्रालंकार। असोक, बकुल, बेल, कैत, सिरस, पाकर, बर, आम (सहकार) केला, जटा (पाट), जटी (जटामासी), काही (काई, अथवा काहू नामक गोभीकी जातिका एक पौधा), बेर, कदम, तिल, राई, नाम स्पष्ट है।

बकुल ध्यान=साधुरूप ठग। बेल=बेला, समय। सिरसि=सिर पर। पा=पाँव। कर=हाथ। जटे=ठगे। जटी=जटाधारी। लख्यो.....चोटैं=याको खेल न लख्यो, सिरसि, पा, कर (पर याकी) बर चोटैं (न लखीं।) कदम गहि=लम्बे कदम। पति=इज्जत।

सोई देस बिचारि के चलिये पथी सुचेत।
जाके जस अनंद की कबिबर उपमा देत॥

कविवर उपमा देत रंक भूपति सम जामैं।
आवागौन न होय रहै मुदमंगल तामैं॥
बरनै दीनदयाल जहाँ दुख सोक न होई।
एहो पथी प्रवीन देस को जैये सोई॥ १९२॥

अर्थ सरल है।

कोई संगी नहिं उतै है इतही को संग।
पथी लेहु मिलि ताहितें सबसों सहित उमंग॥
सब सों सहित उमंग वैठि तरनी के माहीं।
नदिया नाव संयोग फेर यह मिलिहै नाहीं॥
बरनै दीनदयाल पार पुनि भेंट न होई।
अपनी अपनी गैल पथी जैहैं सब कोई॥१९३॥

तरनी=नाव।
अर्थ सरल है।

ग्राहै प्रवल अगाध जल यामें तीछन धार।
पथी पार जो तू चहै खेवनिहार पुकार॥
खेवनिहार पुकार वार नहिं कोऊ साथी।
और न चलै उपाव नाव विन एहो पाथी॥
बरनै दीनदयाल नहीं अव बूड़ै थाहै।
रह्यो महामुख वाय ग्रसन को भारी ग्राहै॥१९४॥

ग्राहै प्रवल=निश्चय ही मगर प्रवल है। वार=इस किनारे पर। पाथी=बटोही। यहां भारी ग्राह कलियुग है, भवसागरसे खेकर पार उतारनेवाला सद्गुरु है। शेष सरल है।

राही सोवत इत किते चोर लगें चहुँ पास।
तो निज धन के लेन को गिनें नींद की स्वास॥
गिनें नींद की स्वास बास बसि तेरे डेरे।
लिये जात बनि मीत माल ये साँझ सवेरे॥
बरनै दीनदयाल न चीन्हत है तू ताही।
जाग जाग रे जाग इतै कित सोवत राही॥ १९५॥

तो=तेरे। बास=वासना, इच्छा। बास...डेरे=तेरे डेरे (में) (तेरी) बास बसि=तेरे ही शरीर में, तेरी ही इच्छाओं में बसकर। चोर=काम क्रोध लोभ आदि विकार। नींदकी स्वास=गाफिल रहनेकी घड़ियाँ।

अर्थ सरल है।

संबल जल इत लै पथी आगे नहीं निबाह।
दूर देस चलियो महा मारू थल की राह॥
मारू थल की राह संग कोऊ नहिं तेरे।
सजग हाथ धन राख लगें पथ चोर घनेरे॥
बरनै दीनदयाल कठिन बचिबो है कंबल।
सखे परैगी जानि उतै इत लै जल संबल॥१९६॥

संबल=मार्गका भोजन, कलेवा।

अर्थ सरल है।

जैये गैल सुछैल बनि पथी सुपंथ बिचारि।
भ्रमो न, ठगिनि मारि है तुमैं ठगौरी डारि॥
तुमैं ठगौरी डारि छीनि सबही धन लैहै।
महा अंध बन कूप बीच या नीच छिपैहै॥

वरनै दीनदयाल लाल निज माल बचैये।
अहै ठगन को पुंज कुंज इत गुनि कै जैये ॥१९७॥

ठगिनी=वासना।
अर्थ सरल है।

सपने पथी सराय परि कहा रचत है राज।
भोर भये छुटिहै यहू तोहि सराय समाज॥
तोहि सराय समाज छूटि साथी सब जैहैं।
भठिहारी सों नेह करै मति तैं पछितैहै॥
वरनै दीनदयाल सोचि नीके चित अपने।
मनोराज-पथ बीच कौन सुख पायो सपने ॥१९८॥

अर्थ सरल है।

मालिनी छंद

सुनहु पथिक भारी कुंज लागी दवारी।
जहं तहं मृग भागे देखिये जात आगे॥
फिरत कित भुलाने पाय ह्वैहैं पिराने।
सुगम सुपथ जाहू बूझिये क्यों न काहू ॥१९९॥

दवारी=दावाग्नि।

वहुत दिवस बीते गैल में तोंहि मीते।
मुख रुख कुंभलाने बैठि ले या ठिकाने॥
अहह सँग न साथी दूर है देस पाथो।
बिलम नहिं भलो जू संबलै लै चलो जू ॥२००॥

मीते=हे मीता, हे मित्र। (सम्बोधनमें मीताका मीते रूप शुद्ध हो सकता है। परन्तु मीताका प्रयोग असाधारण है।)

बहुत विधि दुकानैं हैं लगीं तू न जानै।
बनिक बहु बिधा के सोहते रूप जाके॥
निपुन निरखि लीजै वस्तु मैं चित्त दीजै।
पथिक नहिं ठगावै, देखि तू, रैंनि आवै॥२०१॥

निपट निसि अंधेरी नाहिं सूझै हथेरी।
बहु विधि ठग घेरे मीत कोऊ न तेरे॥
पथिक इत न सोवै भूलि वित्तैं न खोवै।
जगत रहि सुचेतै हौं कहों तोहि हेतै॥२०२॥

सरल है।

अभिनव घनस्यामैं ध्याउ आभा सु जामैं।
विसद बकुल माला सोभती हैं बिसाला॥
द्विजगन हरखावैं ध्यान में मोद पावैं।
पथिक नयन दीजै ताप को सांत कीजै॥२०३॥

अभिनव घनस्यामैं=(१) नये घने बादल. (२) घने नवीन मेघ सरीखे याम भगवान कृष्ण। बकुलमाला=(१) मौलसिरीका बाग, (२) मौलसिरीके फूलोंकी माला। द्विजगन=(१) पक्षी बृन्द, (२) ब्राह्मण लोग यहाँ श्लेषसे भगवान्का ध्यान और स्वयंदूतीका बचन दोनों स्पष्ट है

कुंडलिया

बीती सोवत रैनि सब होन चहै अब भोर।
पथी चेत कर पंथ को चिरियन लायो सोर॥

चिरियन लायो सोर देख चहुँ ओर घोर बन।
चोर लगें बरजोर सखे यहि ठौर राख धन॥
बरनै दीनदयाल न गाफिल ह्वै इत भीती।
साथी पाथी भये जाग अजहूं निसि बीती॥२०४॥

राख धन=धनकी रक्षा कर। इत भीति=इधर भीति है, उधर डर है। पाथी भये=चलते हुए।

अर्थ सरल है।

हारे भूली गैल मैं गे अति पाय पिराय।
सुनो पथी अब तो रह्यो थोरो सो दिन आय॥
थोरो सो दिन आय रहे, हैं संग न साथी।
या बन हैं चहुँ ओर घोर मतवारे हाथी॥
बरनै दीनदयाल सु ग्राम समीप तिहारे।
सूधे पथ को जाहु भूलि भरमौ कित हारे॥२०५॥

हारे=थके। अर्थ सरल है।

चारो दिसि सूझै नहीं यह नद-धार अपार।
नाव जरजरी भार बहु खेवनिहार गंवार॥
खेवनिहार गंवार ताहि पर है मतवारो।
लिये भौंर में जाय जहाँ जल-जंतु-अखारो॥
बरनै दीनदयाल पथी बहु पौन प्रचारो।
पाहि पाहि रघुबीर नाम धरि धीर उचारो॥२०६॥

पथी बहु पौन प्रचारो=हे पथी, आँधी भी तुझे धमका रही है। गँवार खेनेवाला यहाँ "मन" है। अर्थ सरल है।

देखो पथी उघारि कै नीके नैन विवेक।
अचरजमय यहि बाग में राजत है तरु एक॥
राजत है तरु एक मूल ऊरध अध साखा।
है खग तहाँ अचाह एक, इक बहु फल चाखा॥
बरनै दीनदयाल खाय सो निबल बिसेखो।
जो न खाय सो पीन रहै अति अदभुत देखो॥२०७॥

अचाह=इच्छा रहित। राजत है......साखा, देखो (गीता) "ऊर्ध्वमूलमधः शाखं अश्वत्थः प्राहुरव्ययम्।" है खग तहाँ......फल चाखा। यह "द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाः" इस श्रुतिके आधारपर है।
यह सृष्टिका रूपक है। मूल ऊपर सत्यलोकमें, शाखा नीचे भूलोकमें फल चखनेवाला पक्षी जीव है और निरीह साक्षी रूप पक्षी प्रत्यगात्मा है।

देखो पथी अचभ यह जमुनातट धरि ध्यान।
ता मैं विहरैं कंज द्वै करैं मंजु अलि गान॥
करैं मंजु अलि गान नील खंभा तहं दो पर।
पिक धुनि दामिनि बीच तहाँ सर हंस मनोहर॥
बरनै दीनदयाल संख पै सोम बिसेखो।
ता ऊपर अहितनै ताहि पर बरही देखो॥२०८॥

रूपकातिशयोक्तिद्वारा' भगवान् कृष्णका ध्यान है। (अति शयोक्ति=एक अलंकार है जिसमें लोकसीमाका उल्लंघन ही मुख्यतः दिखाया जाता है। रूपकातिशयोक्ति उसके पांचमुख्य भेदोंमेंसे पहला है, जिसमें केवल उपमानका उल्लेख करके उपमेयोंका अर्थ समझाया जाता है। प्रस्तुत कुंडलिया ही उदाहरण है। अन्योक्तिकेनाते इसमें पथी(जीव) को ध्यान करने के उपदेशके सिवा और कुछ भी नहीं है।

या बन में करि केहरी कूप गँभीर अपार।
द्वै पहार की ओट में बसत एक बटपार॥
बसत एक बटपार उभै धनु सर संधाने।
ता पीछे इक स्याह नागिनी चाहति खाने॥
बरनै दीनदयाल इनै लखि डरिये मन में।
पथी सुपंथ विहाय भूमि जनि जा या बन में॥२०९॥

इस नारी रूपी जंगलमें भाँति भाँतिके भय हैं। हे जीव इस जङ्गलकी राहमें भूलके भी न जा। रूपकातिशयोक्तिद्वारा नारीके रूपका वर्णन है।

फूली है सुखमामई नई लहलही जोति।
छई ललित पल्लवनि तें लखि दुति दूनी होति॥
लखि दुति दूनी होति चपलि अलि या पै दो हैं।
लगे गुच्छ द्वै बीच वहे जन को मन मोहैं॥
बरनै दीनदयाल पथिक है कित मति भूली।
ये तो मारक महा-छली विषबल्ली फूली॥२१०॥

पल्लवनितें=हाथ पांव आदि से। चपल अलि=चंचल नेत्र। लगे गुच्छ द्वै बीच=इस लताके बीचमें दो गुच्छे (स्तन) लगे हैं।
रूपकातिशयोक्ति। नारी-रूप-वर्णन।

मोहै चंपक छबिन तें पथिकन यह आराम।
कुंद कली अवली भली लसत बिंब वसु जाम॥
बसत बिंब बसु जाम कीर खंजन संग मिलि के।
सजैं भौंर तित लोल बोल बिलसैं कोकिल के॥

बरनै दीनदयाल बाग यह पथ को सोहै।
पथी गौन है दूरि देख बीचहि मति मोहै ॥२११॥

आराम=बाग। चम्पक छबिनतें=चम्पक वर्णकी छबियोंसे। कुंदकली अवली=दाँत। बिम्ब=कुंदरु, ओठ। वसुजाम=आठों पहर। (वसुदेवताओंकी संख्या आठ है, इसलिये वसु शब्द "आठ" का वाचक माना जाता है।) कीर=नासा। खंजन=आँखें। भौंर=बाल। रूपकातिशयोक्ति। नारीरूप वर्णन।

चारो दिसि लहरी चलै बिलसै बनज बिसाल।
चपल मीन-गति लसति अति तापर सजै सिवाल॥
तापर सजै सिवाल हंस-अवली सित सोहै।
कोक जुगल रमनीय निरखि सर मैं मति मोहै॥
बरनै दीनदयाल मकरपति यामैं भारो।
त्रास मानि हे पथी ग्रास करिहै लखि चारो ॥२१२॥

बनज=मुख। मीन=नयन। सिवाल=केशपाश। हंस अवली=मोतियोंकी माला। कोक=स्तन। सर=नाभि। मकरपति=मछलियों-का स्वामी, कामदेव महाग्राह। चारो=(अपना) चारा (भोजन)।
रूपकातिशयोक्ति। नारी-रूप-वर्णन।

शांत-शृङ्गार-संयम

भूलै जोबन के न मद अरी बावरी बाम।
यह नैहर दिन चार को अंत कंत सों काम॥
अंत कंत सों काम तंत सबही तजि दै री।
जातें रीझै नाह नेह नव तातें कै री॥

वरनै दीनदयाल भूष भूषन अनुकूलै।
चलि पिय गेह सनेह साजि लखि नेह न भूलै ॥२१३॥

तंत=(तंत्र) काम, उतावलापन। भूष=पहिन। इस कुण्डलियामें और आगेकी २२४ वीं तकमें स्त्रीको सम्बोधन किया है। अप्रस्तुत विषय मनुष्यकी "मति" है।

गौने को दिन निकट अब होन चहै पिय मेल।
अजहूं छुटो न तोहि री गुड़ियन को यह खेल॥
गुड़ियन को यह खेल खेलि सब समै बिगारे।
सिखे नहीं गुन कछू पिया-मन मोहनवारे॥
वरनै दीनदयाल सीख पैहै पिय भौने।
एरी भूषन साजि भटू दिन आवत गौने ॥२१४॥

भटू=(बधू, बहू) सखी।

तू मति सोवै री परी कहों तोहि मैं टेरि।
सजि सुभ भूषन बसन अब पिया मिलन की बेरि॥
पिया मिलन की बेरि छाँड़ अजहूं लरिकापन।
सूधे दृग मों हेरि फेरि मुख ना दै तन मन॥
वरनै दीनदयाल छमैगो चूकनहूं पति।
जागि चरन में लागि सुभागिन सोवै तू मति ॥२१५॥

पिय तें बिछुरे तोहि री बिते बहुत हैं रोज।
पिय पिय पपिहा जड़ रटै तू न करै पिय-खोज॥
तू न करै पिय-खोज किते दुरमति मैं फूली।
होन लगे सित केस कौन मन मैं अब फूली॥

बरनै दीनदयाल सुमिरि अजहूँ तेहि हिय तें।
हैं सब तेरी चूक, नहीं कछु तेरे पिय तें ॥२१६॥

सरल है।

औरी पिय सों सब तिया मिलीं महल में जाय।
तू बौरी पौरी धरे बाहर ही पछिताय॥
बाहर ही पछिताय रही अपनी करनी ते।
अली लगी अति देर चली कौनी सरनी ते॥
बरनै दीनदयाल चूक तेरी इहि ठौरी।
अब तो लगे कपाट भई यह बेला औरी ॥२१७॥

सरनीते=रमणी ते, मार्गसे, पद्धति से।
मिलान करो। Tennyson की प्रसिद्ध पंक्तियोंसे
No, no, too late you cannot enter now.]

मोहै नाहिं निहारि. तू एरी नारि गंवारि।
ये दूती हैं जार की तोहि बिगारनिहारि॥
तोहि बिगारनिहारि कहैं मधुरी मृदु बातैं।
तैं सुनिकै ललचाय लखै नहिं इनकी घातैं॥
करिहैं दीनदयाल कंत सों तोहिं बिछोहैं।
अंत धरम बिनसाय कलंक लगाय बिमोहैं ॥२१८॥

सरल है।

पति के ढिग जनि जार पै मार नयन के बान।
जानत सब बिभिचार तव गुनत न नाह सुजान॥

गुनत न नाह सुजान कृपामय मानि अपानो।
बाँह गहे की लाज विचारत स्वामि सुज्ञानी॥
बरनै दीनदयाल बैन सुनि एरी मति के।
है अपजस अघ अंत किये छल सनमुख पति के॥२१९॥

अपानो=अपनी। (आत्मनः=आँत्तँना,=आप्पँना=अप्पना=अपाना, अपना।) जार=उपपति, यार।

सरल है।

स्वामी सुन्दर सीलयुत अपनो गुनी कुलीन।
ताहि त्यागि पर-नाह को सेवति कहा मलीन॥
सेवति कहा मलीन हीन मति कुलटा बौरी।
सुधासिंधु तजि सुधा फिरै मृग जल को दौरी॥
बरनै दीनदयाल अरी ह्वैहै बदनामी।
जार गंवारहिं भजै तजे वर अपनो स्वामी॥२२०॥

सुधा......दौरी=हे सुधा, तू सुधासिंधु (को) तजि मृगजलको दौरी फिरै। (मिलान करो—"आँनद सिंधु मध्य तव वासा
बिन जाने कत मरत पियासा—
—विनयमें तुलसी।)

औरै सब जग को पुरुख, अपने पति परिवार।
जैसो कैसो निज भलो दुहुँ कुल तारनिहार॥
दुहुँ कुल तारनिहार सुजस गति तासों लहिये।
इतर संग भय होय खोय कीरति दुख सहिये॥
बरनै दीन दयाल सील लाजहुँ या ठौरे।
राखि राखि री राखि छाड़ि जग के पति औरे॥२२१॥

अन्वय—जगको सब पुरुष औरै (है), पतिपरिवार (ही) अपने (हैं) जैसो कैसो निज (पति) भलो है, दुहुँकुल (को) तारनिहार है, तासों (ही) सुजस (अरु) गति लहिये। इतर संग भय होय, कीरति खोय दुख सहिये, या ठौरैं सील (है) लाजहुँ है, (या दोउन कों) राखिरी, राखिरी, राखिरी। जगके औरे पति छाड़ि (दै)

अर्थ सरल है।

तेरे ही अनुकूल पिय किन बिनवै प्रिय बोलि।
घट में खटपट मति करै घूंघट को पट खोलि॥
घूंघट को पट खोलि देख लालन की सोभा।
परम रम्य बुधगम्य जासु छबि लखि जग लोभा॥
बरनै दीनदयाल कपट तजि रहु प्रिय नेरे।
विमुख करावनिहार तोहि सनमुख बहुतेरे॥२२२॥

तोहि सन्मुख=तेरे सामने।

यहां मतिको स्त्री और अन्तरात्माको पति मानकर यह अन्योक्ति कही गयी है। मायाका आवरण घूंघटका पट है। काम क्रोधादि विकार और इंद्रियोंके विषय मतिको अन्तरात्मासे हटाकर संसारमें लिप्त कर देते हैं।

येरी जोबन छनक है सुनि री बाल अजान।
निज नायक अनुकूल तें नहीं चाहिये मान॥
नहीं चाहिये मान देख यहि समै सजै है।
द्विजगन के कल गान सुनो, पिय पाय भजै है॥
बरनै दीनदयाल सीख सुनि सुंदरि मेरी।
बिहरि बिहारी नाह पाँहँ तेहि छाँहँ अयेरी॥२२३॥

पियपाय भजै हैं=पतिके चरणोंको भजते हैं, प्यारेको पाकर उनका गुणगान करते हैं। तेहि छांह=यौवनकी छांहमें। विहारी नाह=विहार करनेवालोंमें सर्वोत्तम, वा विहारी नामक नाह।

बिछुरी तू बहु काल तें पौढ़ी पीतम पाँह।
कछु बीतो निसि नींद में कछु कलहन के माँह॥
कछु कलहन के माँह रही मुख फेरि कठोरी।
पिय हिय लायी नाहिं मोद नहिं पायो बौरी॥
बरनै दीनदयाल रही अब निसि ना कछुरी।
तू प्यारे परजंक पौढ़ि अजहूँ लों बिछुरी॥२२४॥

अन्तरात्माके संगही रहनेवाली मति उससे बराबर बिछुड़ी सी रहती है। इसी भावपर यह अन्योक्ति है। सरल है।

कासों, पाती हों लिखों, का पै, कहों संदेस।
जे जे गे ते नहिं फिरे वहि पीतम के देस॥
वहि पीतम के देस बड़ो अचरज या भासै।
कहूँ न तम को लेस तहाँ बिन भानु प्रकासै॥
बरनै दीनदयाल जहाँ नित मोद-मवासो।
जनमादिक दुखदुंद नहीं चर कहिये कासो॥२२५॥

दीप देहरी न्याय से पहली पंक्ति में, "कापै लिखों, कापै संदेस कहौं", "कापै" अपने आगे की और पीछे की दोनों क्रियाओंमें लगेगा। जे जे गे ते नहिँ फिरे=जो जो गये वह लौटे नहीं। कहूँ न तम......प्रकासै=वहां अंधकार नहीं है। सूर्य्यके बिना ही प्रकाश रहता है। (देखो गीता, अ० १५,)

"न तद् भासयते सूर्य्यो न शशांको न पावकः
यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ।")

मोद मवासो=आनन्दका बसेरा, आनन्दाश्रम । चर कहिये कासों=कौनसे चरसे कहा जाय ? किस दूतसे कहा जाय ?

सती

पति की संगति री सती लै सुगती इहि आगि ।
धरे सिंधोरा कर परे अब दै डगमग त्यागि ॥
अब दै डगमग त्यागि भागि जनि चेति चिताकों ।
जरे मरे सिधि पाउ कलंक न लाउ पिता कों ॥
बरनै दीनदयाल बात यह नीकी मति की ।
सुजस लोक, परलोक श्रेय, लै संगति पति की ॥२२६॥

धरे सिंधोरा कर परे=तेरे हाथमें ब्याहके समयके धरे सिंधोरा आ गये हैं। (पतिके संग जलनेवाली ब्याहके समयके सोहागके कपड़े और शवके हाथोंसे ब्याहके ही समयके सिंधोरेसे सिंदूर पहनती है, तब चितापर बैठती है।)

मोहविवेकादि वर्णन

मोह

जीवत हो यह जगत में देह मरे के अंत।
अहो मोह अति सिद्ध हौ तुम में कला अनंत॥
तुम में कला अनंत संत गुनि अचरज भाखत।
सोक अनल के मांह हृदय वारिज को राखत॥
बरनै दीनदयाल नेह मैं नचो नटीवत।
देखि परो नहिं ज्ञान दिव्य लोचन के जीवत॥२२७॥

सरल है।

काम

हर तन धरि कोपागि जग जारत प्रलै कराल।
तुम जारत जग-जनक मन अतन हंसत बिन काल॥
अतन हंसत बिन काल ज्वाल ससि मुख तें व्यापी।
वे लीने कर सूल फूल सर तातें तापी॥
बरनै दीनदयाल जयो तेहि लीला पन करि।
हारि रहे सब भांति लखत तव बल हर तन धरि॥२२८॥

भगवान् शङ्कर तन धर कर अपने क्रोधकी आगसे कराल प्रलयके समय ही जगतको जलाते हैं। तुम जगत् क्या, शंकर, जगत्के बापके मनको ही, बिना समयके, बिना तनके, हँसते हँसते जला देते हो। तुम्हारे चन्द्रमुखसे ज्वाला व्यापती है। उनके शूलसे कहीं अधिक ताप

तो तुम्हारे पुष्प बाणोंमें है। तुमने उन्हें लीलामें ही प्रतिज्ञा करके जीत लिया, भगवान् शंकर तो तन धारण करके, तुम्हारे बलको देखकर, सब तरहसे हार गये।

ह्यां मति आवो मार तुम मारे रथी अपार।
यह हर-ईछन तीसरो तीछन बड़ो विचार॥
तीछन बड़ो विचार तुम्हैं ल छार करैगो।
सबही तो परिवार रोय बहु बार मरैगो॥
बरनै दीनदयाल काम ह्वैहै तव का गति।
उतै रहो कहुँ बहो प्रान लै आवो ह्यां मति॥२२९॥

हर ईछन=शिवजीका नेत्र। (शिवजीका तीसरा नेत्र "ज्ञान" है, इस अन्योक्तिमें उसीकी ओर इशारा है।)

क्रोध

जेहि मन तें उदभव भयो जेहि बल जग मैं सूर।
तेहि निसि दिन जारत अहो दुसह कोपगति कूर॥
दुसह कोपगति कूर बड़ो कृतघन जग मों है।
प्रथम दहत है आप बहुरि दाहत सब को है॥
बरनै दीनदयाल कोप तू सुनि सब जन तें।
अजस होत जनि दहै भयो उदभव जिहि मन तें॥२३०॥

भाजत लै भां, लषि तुमैं इन नैनन के ईस।
करत महा तम क्रोध तुम कौन करै तव रीस॥
कौन करै तव रीस, एक गुन मै, जग लावत।
अधर द्विजन भ्रू नाक निमिष मैं सवै नचावत॥

बरनै दीनदयाल घोर घन लौं छन गाजत।
एहो कोप प्रचण्ड कौन नहिं तुम तें भाजत ॥२३१॥

इन नैननके ईश=सूर्य्य। लै भा=अपनी किरणोंको लेकर। रीस=बराबरी। एक गुन मै=तमोगुण-मय। जग लावत=जगतको जलाते हो। अधर... ..नचावत=एक पलमें ओठ, दाँत, भौं, नाक, सबको नचा देते हो। मनुष्यके ओठ फड़कने लगते हैं। क्रोधी दाँत पीसने लगता है। नाक भौं सकोड़ लेता है।

शेष सरल है।

लोभ

तुमरी लोभ कलानि कों अचरज कहैं प्रवीन।
ज्यों ज्यों वय प्रासै जरा त्यों त्यों होत नवीन ॥
त्यों त्यों होत नवीन सकल जन को तुम देखत।
खरे रहो सब तीर न कोऊ तो तन पेखत ॥
बरनै दीनदयाल अखिलमहि तो मति घुमरी।
लही न पुरो बराट, कला नहिं चूकति तुमरी ॥२३२॥

सब तीर=सबके पास। पुरी बराट=पूरी कौड़ी। तो मति घुमरी=तुम्हारी मति अमित है।

अंचयो कुंभज नीरनिधि सो सिध बड़े कहात।
तुम जगजीवन निधिनिकर सीकर सम चटिजात ॥
सीकर सम चटि जात लोभ तव प्यास न जाई।
तुम अकास ऋपि रेनु कहा तिन केरि बड़ाई ॥
बरनै दीनदयाल लोक तिहुँ ग्रसि कै पचयो।
तऊ भूख नहिं प्यास गई सत सागर अंचयो ॥२३३॥

जगजीवन निधि निकर=(१) जगतमें जीवनभरकी सारी कमाइयोंके समूह। (२) जगतके जीवन-निधि अर्थात् समुद्रोंके समूहको। सीकर=अत्यन्त सूक्ष्म जलविन्दु। (छींटापर छीटा मारनेसे जो अत्यन्त छोटी बून्दियाँ बन जाती हैं सीकर हैं।) सतसागर= सातों समुद्र, सैकड़ों सागर।

आसा की डोरी गरे बांधि देत दुख खोभ।
चित पितु को बंदर कियो अहो कलंदर लोभ॥
अहो कलंदर लोभ छोभ दै नाच नचावत।
जदपि निरादर चोट समुझि अतिसै दुख पावत॥
बरनै दीनदयाल लोग सब लखैं तमासा।
भरमावै घर घरहिं तऊ नहिं पूरति आसा॥२३४॥

खोभ=क्षोभ, उद्वेग। कलन्दर=बन्दर नचानेवाला मदारी।
सरल है।

दम्भ

देखो कपटी दंभ को कैसो याको काम।
वेचनिहारो वेर को देत दिखाय वदाम॥
देत दिखाय वदाम लिये मखमल की थैली।
वाहिर वनी विचित्र, बस्तु अंतर अति मैली॥
बरनै दीनदयाल कौन करि सकै परेखो।
ऊंची वैठि दुकान ठगै सिगरो जग देखो॥२३५॥

वेचनि.. ···वदाम="जौ फरोश गन्दुम नुमा" गेहूँ दिखाकर जौ वेचनेवाला।

सरल है।

अभिमान

करनी जंबुक जून ज्यों गरजन सिंह समान।
क्यों न डरै जग लखि तुमै अहो बीर अभिमान ॥
अहो बीर अभिमान धरा को धीर धरैगो।
कोप न करो प्रचंड सबै ब्रह्ममंड जरैगो ॥
बरनै दीनदयाल गिरा भट तो मत दरनी।
धरनीधर लों गई नई यह अद्भुत करनी ॥२३६॥

जून=जीर्ण, पुराना। गिरा भट=बढ़ बढ़के बोलनेवाला शब्दशूर। तो मति दरनी=तेरी मति फाड़नेवाली, दारुण दुःख देनेवाली है।

सरल है।

विवेक

सुनिये बैन बिबेक जू हौ नृप धीरज धाम।
जौ लगि जीवत काम वह तौ लगि होय न काम ॥
तौ लगि होय न काम बड़ो खल है रिपु दल मैं।
याकी कला अनेक सकल जग जीते छल मैं ॥
बरनै दीनदयाल बिरति सों मिलि हित गुनिये।
भनै जु मंत्री साधु सीख आछी सो सुनिये ॥२३७॥

काम=कामना, वासना।

करिये बेगि बिबेक जू शांति प्रिया की सोध।
सकुल कृतारथ होंहुगे उपजत पूत प्रबोध ॥
उपजत पूत प्रबोध बजैगी अनंद बधाई।
धन्य कहैंगे धीर रहैगी कीरति छाई ॥

बरनै दीनदयाल जगत के जाल न परिये।
मिलि नियमादिसखान शांति सों नित हित करिये ॥२३८॥

सुनिये भूप बिबेक तुम बासुदेव अवतार।
किय मन पितु बसुदेव को बंधन तें उद्धार॥
बंधन तें उद्धार कियो कामादि कंस हनि।
जनकहिं दे आनंद कृतारथ कुलहिं कियेधनि॥
बरनै दीनदयाल सुमति सों नित हित गुनिये।
जातें पूत प्रबोध प्रगट ह्वै सो सिख सुनिये ॥२३९॥

सरल है।

बिचार

सुनिये बैन बिचार तुव या जग होते जौ न।
तो या जीव मलीन को करत कृतारथ कौन॥
करत कृतारथ कौन, ख्वार इहि मारहि मारत।
को करिके निरधारहि सार असार बिचारत॥
वरनै दीनदयाल वहै बिधि गुरुगम गुनिये।
जातें होय प्रबोध उदै सो सम्मति सुनिये ॥२४०॥

मार=काम देव। गुरुगम=गुरु-गम्य।
सरल है।

बिराग

एहो त्याग मृगेस तुम बिन यह तन वनराज।
करत स्यार कामादि अव ह्वै स्वतंत्र सिरताज॥

है स्वतंत्र सिरताज फिरत कूकत, कै फूले ?
किन गर्ज्जत घननाद, पराक्रम कित वह भूले ?
बरनै दीनदयाल त्रस जौलों नहिं दैहो।
तौलों नहि ये क्रूर कढ़ैंगे हिय तें एहो ॥२४१॥

वनराज=हे सिंह, हे मृगेश।

फिरत... ..फूलें=खुशीसे कुहुकते फिरते हैं, कोई कोई फूले फिरते हैं। किन ... .. भूले=तुम क्यों बादल की तरह नहीं गरजते, वह पराक्रम कहाँ भूल गये।

शेष सरल है।

संतोष

एहो तोख कुलोभ गम को तौलों है बास।
जौलों नहिं रवि रूप तुम प्रगटत ह्वै अकास ॥
प्रगटत ह्वै अकास लाभ लघु मुद जुगुनू के।
दुख दीनता मलीन उलूक रहै ढिग ढूके ॥
बरनै दीनदयाल लोभ को कब भय दैहो।
तुम बिन सुख नहि रंच सुनो संतोख अएहो ॥२४२॥

सरल है।

क्षमा

बानी कटु सुनि कोपकी छमा गहो न गलान।
कहा हानि मृगराज की भूकत जौ लखि स्वान ॥
भूकत जौ लखि स्वान हारि मानैगो आपै।
बैठि रहो हे बीर धीर तुम बोलत कापै ॥

बरनै दीनदयाल बात बुध बिमल बखानी।
कीजै कछू न सोच सठन की सुनि कटु बानी ॥२४३॥

सरल है।

मन

हे मन ये कामादि तव तनै नरक की खानि।
तुम जानत सुखदानि हैं ये निसि दिन दुखदानि ॥
ये निसि दिन दुखदानि मीत बनि प्रीति प्रकासैं।
अंतर अरि हैं अंत छीनि तौ निज धन नासैं ॥
बरनै दीनदयाल संग इनके है छेम न।
सुतविवेक तें आदि करौ तिन तें हित हे मन ॥२४४॥

सरल है।

हे मन बद मद मार को कछु न करो इतबार।
ये तो दैतन दैत हैं सुभ गुन भच्छनिहार ॥
सुभ गुन भच्छनिहार कुमति रजनी मैं गाजैं।
होय प्रबोध प्रभात नहीं तब लों खल राजैं ॥
बरनै दीनदयाल जगत मैं तौ लगि छेम न।
जौ लगि नहिं ये क्रूर कढ़ैंगे हिय तें हे मन ॥२४५॥

बद=खोटे। सरल है।

प्रबोध प्रशंसा

भारी भूपति जीव यह रह्यो अखिल को ईस।
भयो भूल बस कीटसम निज पद पर्यो न दीस ॥

निज पद पर्‍यो न दीस ताहि सुर सीसहिं चाढ़्यो ।
हे प्रबोध तुम धन्य जगतसरि बूड़त काढ़्यो ॥
बरनै दीनदयाल वेद तव है जसकारी ।
चिदानंद संदोह दियो सिंहासन भारी ॥२६४॥

जसकारी=यश कहनेवाला ।

ऊपरकी बीस कुण्डलिया महामोहपर महाविवेककी विजय, शान्ति-की प्राप्ति और प्रबोधकी उत्पत्तिपर बड़ा उत्तम रूपक है । श्रीकृष्णमिश्रके प्रबोधचन्द्रोदय नाटकमें इस विषयका अत्यन्त विशद और रोचक विस्तार है ।

फुटकर प्रसंग वर्णन

करनी विधि की देखिये अहो न बरनी जाति।
हरनी को नीको नयन बसै बिपिन दिन राति॥
बसै बिपिन दिन राति बरन बर बरही कीने।
कारी छबि कलकंठ किये फिरि काक अधीने॥
बरनै दीनदयाल धीर धन ते बिन धरनी।
बल्लभ बीच बियोग बिलोकहु बिधि को करनी॥२४७॥

बरही=बर्हि, मोर। कारी...अधीने=काली कजूटी कोयलको छबीली और सुरीली बनाकर भी कौएके अधीन कर दिया, क्योंकि कोयल कौएके अधीन ही पलती है। धीर धनते बिन करनी=इस धरतीपर धीर (बुद्धिमान) लोग धनरहित हैं।

शेष सरल है।

आये काम न सांकरे रच्छक खरे अपार।
रतनाकर अरु चंद के हुते सकल हितकार॥
हुते सकल हितकार विबुध वर बीर बांकुरे।
और सूलधर ईस गदाधर धीर ठाकुरे॥
बरनै दीनदयाल रहे सब सखा सुहाये।
कुंभजात अरु राहु ग्रसत को काम न आये॥२४८॥

द्वैज दिवस के चंद को बंदत सबै सप्रीति।
कहत कलंकी पूर ससि अहो क्रूर जग रीति॥
अहो क्रूर जग रीति बढ़े पर चौगुन दूषैं।
मिलै कुटिल कबहूं क ताहि महिमा करि भूषैं॥

बरनै दीनदयाल न प्रापति है दिन दस के।
तबै करै बहुमान जथा ससि द्वैज दिवस के ॥२४९॥

जाको खोजत सो मिलै यामैं संसय नाहिं।
विरचे माखी मधु सुधा भीषन वन के माहिं ॥
भीषन वन के माहिं सिंह गजराज विदारै।
मुकुता मिलै मराल मिलिंद सरोज विहारैं ॥
बरनै दीनदयाल स्वातिजलऊ पपिहा को।
मिलै भली विधि आय जौन जग खोजत जाको ॥२५०॥

तीनों सरल हैं।

भूप-कूप-श्लेष

कूपहि आदर उचित है नहीं गुनिन को हेय।
अंतर गुन को ग्रहन करि फिर फिर जीवन देय ॥
फिर फिर जीवन देय गुनी गुन वृथा न जावैं।
अति गँभीर हिय दुहू झुके तें अमृत लखावैं ॥
बरनै दीनदयाल न देखत रूप कुरूपहिं।
जो घट अरपन करै ताहि तें ममता कूपहिं ॥२५१॥

कु=पृथ्वी। कूप=(१) राजा (२) कुआं। गुनी=(१) गुणवान (२) रस्सी रखनेवाला। अंतर=अपने भीतरके। जीवन=(१) जीविका, (२) जल। गुन=(१) गुण, (२) रस्सी। अमृत=(१) सुधा, (२) जल। घट=(१) हृदय, (२) घड़ा।

श्लेष सरल सुबोध है।

सज्जन-ढेकुल श्लेष

गुन को गहि यहि खेत में नमैं सुबंसज दोय।
कृसितन जीवन देत हैं पीछे गुरुता होय॥
पीछे गुरुता होय कूप तें आदर पावैं।
ऊँच कहैं सब कोय अमृत घट पुन्य सुहावैं॥
बरनै दीनदयाल धन्य कहिये जग उन को।
सहि दुख, सुख दै सवै, सरल अति हैं, गहि गुन को॥२५२॥

गुन=(१) गुण (२) रस्सी। खेत=(१) क्षेत्र, संसार, (२) खेत (साधारण)। नमैं=(१) नम्र होते हैं (२) झुकते हैं। सुबंसज=(१) अच्छे वंसके, (२) अच्छे बांसके। कृसितन=(१) दुवलोंको, दुखियोंको, (२) खेतोंके तनको। जीवन=(१) जीविका, (२) जल। गुरुता=(१) वड़ाई, (२) भार, वोझ, जो ढेकुलको नमानेके लियेपीछे रहता है। कूप=(१) राजा, (२) कुआं। आदर=(१) सम्मान, (२) आर्द्रता जल। अमृत घट=(१) अमर हृदय, (२) जलका घड़ा। दोनों पक्षका भावार्थ सरल है।

सूक्ष्माऽलङ्कार

कासों हनिये कोप को कापै पैये ज्ञान।
गुरू मौन सैनहिं कह्यो छिति छ्वैके धरि कान॥
छिति छ्वैके धरि कान दसन रवि फेरि लखाए।
देखि केसकी ओर सुनैन कपाट लगाए॥
वरनै दीनदयाल सिख्य गुरु की करुना सों।
समुझि लई सव सैन, वैन तिन कह्यो न कासों॥२५३॥

शिष्यने गुरुसे पूछा "भगवन्, क्रोधको कैसे मारा जाय, ज्ञान किससे मिलता है, गुरुने चुपचाप इशारेसे जवाब दिया। पृथ्वीको छूकर कानोंपर हाथ रखा अर्थात् (पृथ्वी) क्षमासे, सहनशीलतासे क्रोधको जीतो और (कान) श्रुतिसे ज्ञान लो। फिर दांतोंकी ओर इशारा किया और फिर सूर्यकी ओर कि जो दांत हो अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें कर चुका हो उसे ही अपना सूर्य वा ज्ञानका प्रकाशक गुरु बनाओ। फिर चेलेके बालोंकी ओर देखकर पलकें बन्द कर लीं अर्थात् इशारा किया कि [काले बाल] बालकृष्णका ध्यान करो।

मुद्रालऽङ्कार

कोई सारस नहिं मिलै मदनबान के बीच।
मीन केतु की कीच फँसि कुंद भई मति नीच॥
कुंद भई मति नीच निवारी जाय नहीं है।
जुही समग्री स्याम जपा कर नाम सही है॥
जाती दीनदयाल बिमल बेला सब्बोई।
ताहि चेत कर बीर धीर बरने सब कोई॥२५४॥

सारस (कमल), मदनवान, केतकी, कुंद, निवारी, जुही, स्याम (नीला), जपा (अड़हुल), जाती (चमेली), वेला, सब्बो, करवीर (कनैल), कोई, इनके नाम इस कुण्डलियामें आ गये हैं।

कामदेवके बाणसे घायल होनेमें कोई सरसता नहीं मिलती, उसके कीचमें फँसकर नीच बुद्धि कुंद हो गयी, उसे किसी तरह निवारण नहीं किया जा सकता। सब सामग्री जुट गयी है, श्याम (भगवान) नाम जपाकर, यही ठीक है। देख, सारी अच्छी वेला निकली जाती उसी नामको चेतकर जिसका वर्णन (गुणगान) सभी वीर धीर करते

सो नाहीं नर सुघर है जो न भजे श्री रंग।
पारावार अपार जग बूड़त भौंर कुसंग॥
बूड़त भौंर कुसंग ठौर ता मँहि नहि पावै।
सीसहु देत डुबाय भलो हाथहुँ न उठावै॥
बरनै दीनदयाल रूप हरि को तिहि माहीं।
ध्यान धरै दृढ़ नाव जानि बूड़त सो नाहीं॥२५५॥

सोना, रांगा, पारा, तांबा, सीसा, लोहा, रूपा, इन सात धातुओं के नाम मुद्रालंकारद्वारा लाये गये हैं। अर्थ सरल है।

व्याजस्तुति

कासी हाँसी मुनि करैं सुनि करनी तव एक।
दासी तपसी एक सी दै गति बिना विवेक॥
दै गति बिना विवेक, एक या और कुचाली।
अरपै कोऊ कोटि तिन लै करो कपाली॥
बरनै दीनदयाल काय तिहुँ तिन की नासी।
परे सरन जे आय कहा यह कीनी कासी॥२५६॥

एक या और कुचाली=यह एक शरारत और करती हो कि। काय तिनकी तिहुँनासी=उन लोगोंके तीनों शरीरोंको, स्थूल, लिंग और सूक्ष्म शरीरोंको नष्ट कर देती हो।

सुर धुनि वंकित किमि चलै चकित सुकवि इहि हेत।
अहो होति लज्जित नहीं खलन ईस पद देत॥
खलन ईस पद देत नहीं परिनाम विचारै।
बाँधै गहि लै जटा न वे उपकार निहारै॥

वरनै दीनदयाल परी सब तो सिर पै सुनि।
करी अकरनी जौन भोग ताको री सुर धुनि ॥२५७॥

गंगे! सुकवि यह देखकर चकित हैं कि खलोंको तू ईशपद देकर खजाती तो नहीं है, उलटे बांकी चालसे अकड़ती चलती है।

शेष सरल है।

प्रेम पञ्चक सवैया

छल बंचक हीन चलै पथ याहि प्रतीति सुसंबल चाहनो है।
तहँ संकट वायु वियोग लुवैं दिल को दुख-दाव मैं दाहनो है॥
नद सोक विषाद कुग्राह ग्रसैं खर धारहि तौ अवगाहनो है।
हित दीनदयाल महा मृदु है कठिनै अति अंत निवाहनो है ॥२५८॥

इस पथमें चलै तो छल रूपी ठग साथ न हो, प्रतोति रूपी राह खर्च भी चाहिये। इस पथमें संकटकी हवा है, वियोगकी लुवैं चलती हैं, दिलको दुःखकी दावाग्निमें जलाना पड़ता है। इस राहमें शोकका नद है, विषादके भयानक घड़ियाल पकड़ लेते हैं, और कठोरताकी धाराको थहाना ही पड़ता है। हित (प्रेम) अत्यन्त कोमल है परन्तु अन्ततक उसका निवाहना ही तो कठिन है॥

सजि सेज सुवारि बिल्लन की तहं मीत मतंग सो आवनो है।
वरु नीर रखै सिकता घट में मकरी पट सिंह फंसावनो है॥
सुगमै वरु बारिधि पैरिबो है पय ऊपर तारिबो पाहनो है।
हित दीनदयाल महा मृदु है कठिनै अति अंत निवाहनो है ॥२५९॥

(इस मार्गसे चलना तो मानो) पानीके बुलबुलोंकी सेज सजकर हाथी मित्रको उसपर सुलाना है। वल्कि बालूके घड़ेमें पानी रखना

है, मकड़ीके जालेमें सिंहको फँसाना है, बल्कि समुद्रको तैरकर पार करना सुगम है, या पानीपर पत्थर तैराना भी सुगम है। हित (प्रेम) अत्यन्त कोमल है पर अन्ततक उसका निबाहना ही तो कठिन है॥

रसना अहि की गहिबो सुगमै बन कंटक गौन उबाहनो है।
गिरि तें गिरिबो भिरबो गज तें तिरबो बड़वागि को थाहनो है॥
रन एक अनेकनि तें जु लरै तिमि ताहि न सूर सराहनो है।
हित दीनदयाल महामृदु है कठिनै अति अंत निबाहनो है॥२६०॥

बल्कि सांपकी जीभ पकड़ लेना सुगम है, कंटकमय वनमार्गमें नंगे पाँव चलना सुगम है। पहाड़से कूद पड़ना, हाथीसे भिड़ना, बड़वानलको थहाकर उसमेंसे बच आना बल्कि सुगम है। रणमें अकेला अनेकसे लड़े तब भी चाहे उसकी बहादुरीकी तब भी दाद न दीजिये, (परन्तु जो इस मार्गसे चले वह इन सबसे बड़ा बांका वीर है क्योंकि) हे दीनदयाल, हित है तो महामृदु पर उसका अन्ततक निर्वाह अत्यन्त कठिन है।

पछलत्त तुरीन की हैं सुगमै नख नाहर को हठि गाहनो है।
विष नीर को पीर कौ धीर सहै चढ़ि चीर सरीरहि दाहिनो है॥
मरु कूप के बीच फंसै सुगमै बरु मीच तें वैर बिसाहनो है।
हित दीनदयाल महा मृदु है कठिनै अति अंत निबाहनो है॥२६१॥

घोड़ियोंकी पछलत्तिआँ सुगम हैं, सिंहके पंजेके नाखूनको पकड़ लेनेको लाचार होना बेहतर है। बुद्धिमान लोग विषके अरकसे उपजी पीड़ा सह भी लें, चीड़ (धूप) के पेड़पर चढ़कर उसके साथ ही शरीरको जला देना भी बरदाश्त हो जाय। मरुस्थलके सूखे कुएं में

वल्कि फँस रहना या मौतसे वैर बेसाहना हो भी सके। परन्तु हे दीनदयाल हित (प्रेम) है तो बहुत कोमल परन्तु अन्ततक उसका निबाह कठिन ही है।

खल निंदक सूकर भै जहं है गरजै गज मत्त उराहनो है।
कुलकानि अपार पहार जहाँ गुरु लोभ संकोच कुपाहनो है॥
जल भौंर भरी विपदा की सरी तहं पंक कलंकहि गाहनो है।
हित दीनदयाल बड़ो वन है कठिनै अति अंत निबाहनो है॥२६२॥

निन्दा करनेवाले खलरूपी बनैले सूअरोंका जहां भय है, उलाहने रूपी मस्त हाथी जहां गरजते हैं, अपने कुलके लिहाजका जहां अपार पहाड़ है, जहां बड़ोंके संकोचके भारी भारी चट्टान हैं। जहां बिपदाकी नदीमें जल भरा है, भौंर भी है, कलंक रूपी कीचड़में डूबकर थहाना है। दीनदयालु कहते हैं कि हित (प्रेम) बड़ा भयानक वन है, इसमें अन्ततक निवाहना अत्यन्त कठिन अवश्य है।

दोहा

पंचक यह है प्रेम को रंचक चित जो देइ।
छल वंचक वंचै न तिहि दीनदयालु जु सेइ॥२६३॥

वंचै=ठगै। अर्थ सरल ही है।

ग्रन्थान्ते मङ्गलम्

मेटनहारे विघन के विघन-बिनायक नाम।
रिधि सिधि विद्या उदर ते लंबोदर अभिराम॥
लंबोदर अभिराम सकल सुभ गुन हिय धारे।
और गहन के हेत देत मनु दंत पसारे॥
बरनै दीनदयाल भख्यो अजहूँ लौं पेट न।
बक्रतुंड करि काह चहत ब्रह्माण्ड समेटन॥२६४॥

सरल है।

दोहा

यह अन्योक्ति सुकल्पद्रुम साखा वेद बखानि।
विरची दीनदयालगिरि कवि द्विजवर सुखदानि॥२६५॥

वेद=चार।

कुंडलिया सु घनाक्षरी सुखद सु दोहा वृत्त।
हरै सवैया मालिनी मिलि पंचामृत चित्त॥२६६॥

जैसे मनुष्यादि चर प्राणियोंके शरीरमें रक्तका संचार होता है, उसी तरह वृक्षोंके शरीरभरमें एक प्रकारके रसका सचार होता रहता है जिसकी बदौलत पेड़ जीते हैं। इस रसको "अमृत" कहना बहुत ही युक्त है। इस कल्पवृक्षमें पांचों प्रकारके छन्दोंके पंचामृतका संचार होता है जो मनको लुभा लेते हैं।

यह कलपद्रुम ग्रन्थ में मधुर छंद सुचि पंच।
पंचामृत हिय पान करि जड़ता रहै न रंच॥२६७॥

अमृतके पानसे रोगादि शारीरक दोष नहीं रहते। इस पंचामृतको पीनेसे जड़ता जरा भी नहीं रह जाती।

अब इस ग्रंथकी समाप्तिके समयका वर्णन करते हैं।

कर[२] छिति[१] निधि[९] ससि[१] साल में माघ मास सित पच्छ।
तिथि वसंत जुत पंचमी रबि बासर सुभ स्वच्छ ॥२६८॥

कर=२; मनुष्यके हाथ दो होते हैं, इस लिये करसे संख्यामें दोका संकेत है।

क्षिति=१, पृथ्वी एक ही है, अतः यह एकका संकेत है।

निधि=९, निधि नव हैं। अतः यह नवका संकेत है।

शशि=१, चन्द्रमा (पृथ्वीके) एक ही हैं। संकेत हुआ एक,

"अंकानां वामतो गतिः=" अंक बायें चलते हैं, इस सूत्रके अनुसार, २ इकाई, १ दहाई, ९ सैकड़ा और १ हज़ार अर्थात् संवत् १९१२ हुआ। शेष स्पष्ट है।

सोभित तिहि औसर विषे बसि कासी सुख धाम।
बिरच्यो दीनदयाल गिरि कलपद्रुम अभिराम ॥२६९॥

अभिराम=सुखदायक, सुन्दर।

"शोभित" यहाँ ऊपरवाले दोहेमें निर्दिष्ट कालका विशेषण है, और काशी और कल्पद्रुमका भी विशेषण हो सकता है। कविके लिये यह विशेषण ठीक नहीं जँचता।

अभिमत फल दातार यह विविध अर्थ को देत।
जो धुनि गुनि कवि मुदित मन पढ़िहैं प्रेम समेत ॥२७०॥

यदि इसकी ध्वनिको, इसके व्यंग्यको, खूब समझकर
प्रेम सहित कविलोग पढ़ें तो यह भांति भांति
अभीष्ट फल देनेवाला है।

उपालंभ अरु नीति जुत प्रीति
विविध भांति सुमनस लसैं या

इसमें कहीं उपालंभ है, कहीं नीति
वैराग्यकी बातें हैं। इसमें भांति
रंगविरंगके फूल हैं।

सोभित अति मतिथल
अरप्यो दीनदयालगि

मति रूपी थलमें यह वृक्ष
देता है। इस रसालय फलप-
को अर्पण किया।

मिलान करो "सुमति

इति श्रीकाशी
द्रुमे चतुर्थी शाखा

यदि इसकी ध्वनिको, इसके व्यंग्यको, खूब समझकर आनन्दसे प्रेम सहित कविलोग पढ़ें तो यह भांति भांतिके "अर्थ" देता है, अभीष्ट फल देनेवाला है।

उपालंभ अरु नीति जुत प्रीति रसहु सुविराग।
विविध भांति सुमनस लसैं यामें सुमन सराग ॥२७१॥

इसमें कहीं उपालंभ है, कहीं नीति है, कहीं प्रीति रस है और कहीं वैराग्यकी बातें हैं। इसमें भांति भांतिके सद्विचार शोभा देते हैं जो रंगविरंगके फूल हैं।

सोभित अति मतिथल सु यह सुमन सहित सब काल।
अर्प्यो दीनदयालगिरि वनमालिहिं सुरसाल ॥२७२॥

मति रूपी थलमें यह वृक्ष सब कालोंमें फूला हुआ अत्यधिक शोभा देता है। इस रसालय कल्पवृक्षको दीनदयालगिरिने भगवान् वनमाली—को अर्पण किया।

मिलान करो "सुमति भूमिथल हृदय अगाधू"

—तुलसी।

इति श्रीकाशीवासी दीनदयालगिरिविरचिते अन्योक्तिकल्प-द्रुमे चतुर्थी शाखा समाप्ता।

इति।